प्रकाशक
साहित्य भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद

मुद्रक
जगतनारायणलाल
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

प्रथम संस्करण की भूमिका

मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ?

'राक्षस का मंदिर' लिखने के बाद मुझे यह नाटक 'मुक्ति का रहस्य' लिखना अनिवार्य हो उठा, कुछ तो इसलिये कि उस नाटक में जीवन के जिस पहलू पर मैंने प्रकाश फेंका था सदाचार और परंपरा निर्वाह की जिन रूढ़ियों की ओर मैंने संकेत किया था- सब ओर से सही होने पर भी उनमें इतना विष और इतना अनुताप था कि कुछ लोग उसे आसानी के साथ पचा नहीं सके। जिन बातों के लोग अभ्यस्त नहीं थे, जिन समस्याओं की ओर से आँखें बंद रखना ही लोग पसंद करते थे, वे अब एक झटके में ही उनके सामने आ गईं। 'राक्षस का मंदिर' को पढ़कर कुछ मित्रों ने समझा कि मैं सदाचार या दुराचार, ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद अथवा दूसरे शब्दों में जीवन और जगत की सभी बातों को बुद्धिवाद और तर्क की खुली कसौटी पर रखकर अपनी लेखनी से समाज की भयंकर हानि करना चाहता हूँ।

इस संबंध में मैं कुछ विशेष नहीं कहना चाहता। मेरा यह निश्चित विचार है कि सदाचार या दुराचार, ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद के सिद्धांत, विवेक और इतिहास की कसौटी पर सदैव एक नहीं अनेक रूप में देख पड़े हैं। विभिन्न कालों और भिन्न-भिन्न देशों में इन चीज़ों का कोई एक निश्चित रूप नहीं रहा। आज दिन सदाचार का जो रूप है, बीते युग में वह सब से बड़ा दुराचार था और भविष्य में सदाचार का जो रूप होगा आज दिन उसकी कल्पना भी कठिन समझी जा सकती है। आँख मूँद कर स्वीकार कर लेने से तो बेहतर है सोचकर स्वीकार कर लेना। आज दिन जिसे हम बुद्धिवाद या बौद्धिक मीमांसा

कहते हैं उसके मूल में यही धारणा काम कर रही है। स्वीकार अथवा अस्वीकार कर देने में ही किसी समस्या का अंत नहीं होता। जो है अवश्य रहेगा, हम मानें या न मानें। हमारे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का आधार अंधविश्वास या परंपरागत रूढ़ियों का निर्वाह न होकर हमारी आत्मा की, हमारी अनुभूति की, अभिव्यक्ति होनी चाहिये। हमारा विवेक इतना जागरूक होना चाहिये कि हम जीवन की ऊपरी सतह को उठाकर देखें वहाँ चिरंतन क्या है? चिरंतन सब कुछ चिरंतन। स्त्री और पुरुष का चिरंतन, सदाचार और धर्म का चिरंतन, जीवन और मृत्यु का चिरंतन चिरंतन विश्व का चिरंतन विधान। ईश्वर के विषय में 'हाँ या नहीं' पर्याप्त नहीं हो सकता। उसका होना या न होना हमारे जीवन या व्यक्तित्व में क्या उलट फेर करता है? वह भावना गम्य है या बुद्धिगम्य? शाब्दिक प्रार्थना या विधिवत पूजा का मतलब क्या है? क्या हम से अलग उसकी कोई प्रथक् सत्ता है? यदि हम उसकी प्रार्थना या पूजा न करें तो क्या वह हमसे रुष्ट हो जाएगा? हमको दंड देने की व्यवस्था करेगा? "यदि हाँ" तो क्या उसके उपकरण भी वही हैं जो मनुष्य के हैं? मानवी विकारों की सर्दी गर्मी से उसे भी छुट्टी नहीं? वह भय करने की वस्तु है या प्रेम करने की? बुद्धिवाद ईश्वर संबंधी इन समस्याओं की मीमांसा करना चाहता है। इसलिये साधारण समझ के जीव उसमें अविश्वास या नास्तिकता की झलक देख पाते हैं। मेरा अपना विश्वास तो यह है कि बुद्धिवाद स्वतः अनंत विश्वास है। उसमें भ्रम और मिथ्या को स्थान नहीं। बुद्धिवादी ईश्वर की सत्ता में अपनी और अपनी सत्ता में ईश्वर की सत्ता देखता है, वह उसे अपने से कोई प्रथक् तथ्य नहीं मानता। वह उसकी उपासना इसलिये नहीं करता कि उसकी प्रार्थना या पूजा से नरक की यातनाओं से छुट्टी मिल जायेगी। बुद्धिवादी व्यक्तिवादी भी हो सकता है। उसका स्वतंत्र और पूर्ण विकसित व्यक्तित्व, नरक और स्वर्ग की कहानी सुनता भी है और नहीं भी सुनता किसी भी दशा में उसे निर्लिप्त या निर्बन्ध रहना है

जीवन और जगत के केवल बाहरी विधि-विधान उस पर शासन नहीं कर सकते। जिस तरह पौदे सूर्य से पोषण पाने के लिये प्रार्थना नहीं करते, उसी तरह दीर्घ जीवन या सुख के उपयोग के लिये बुद्धिवादी ईश्वर से प्रार्थना नहीं करता। उसकी पूजा या उपासना घंटे दो घंटे साँझ या सवेरे की नहीं होती, उसकी प्रक्रिया उसके हृदय में प्रतिक्षण और प्रतिमुहूर्त चलती रहती है। इसलिये कि उसका जीवन तो विवेक और प्रकाश का है अंधविश्वास या परंपरा निर्वाह का नहीं। उसे अपने मार्ग का पता है इसलिये वह चलता रहता है, अंधकार में टटोलना या इधर से उधर हो जाना उसके लिये सम्भव नहीं। ईश्वर उसके लिये प्रेम का आधार है भय का भूत नहीं। इसी लिये ईश्वर संबंधी प्रचलित धारणाओं के साथ वह कभी-कभी ठिठोली कर बैठता है। लोग कहते हैं, वह नास्तिक है।

व्यक्तिगत सदाचार या सामाजिक नीति-निर्वाह के संबंध में भी बुद्धिवादी कुछ इसी तरह की स्वतंत्रता से काम लेता है। सचाई जो है, जिस रूप में है, उसे तो वह स्वीकार कर लेता है, लेकिन उस पर कितने वेठन चढ़े हैं, उसे कितने कपड़े और गहने पहनाए गए हैं, वह कितनी जंजीरों से बाँधी गयी है, इन बातों को वह स्वीकार नहीं करता। स्त्री और पुरुष इस विश्व के दो पहलू हैं, वे एक होते हैं प्रकृति के निश्चित नियमों के अनुसार, प्रकृति की निश्चित प्रणाली की रक्षा और प्रचार के लिये। उसे हम संतानोत्पत्ति, प्रजनन या "प्रजायै गृहमेधिनाम्" जो मन में आए कह लें। स्त्री और पुरुष के सम्मिलन में "नूतन सृष्टि" प्रकृति की यही शक्ति या समस्या, प्रधान काम करती है। इस संबंध का सब से बड़ा आकर्षण तब उत्पन्न होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों प्रजनन की शक्तियों से भरपूर होते हैं, उस समय वे दोनों साथ-साथ या समीप रहना चाहते हैं प्रकृति के खिलौने प्रकृति की सर्वव्यापिनी इच्छाशक्ति में अपने को भूल जाते हैं, इस भूल जाने की क्रिया को एक सुन्दर नाम प्रेम या प्रणय दे दिया गया है। इस प्रेम या प्रणय के लिये बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं, विवाह के भिन्न-भिन्न रूप, बंधन और कर्तव्य

की भावनाओं के साथ आत्महत्या सा एकांगी स्वार्थ भी। प्रकृति के गर्भ से प्रेम की बाढ़ आती है और चली जाती है, लेकिन अपने पीछे जो कीचड़ और दलदल छोड़ जाती है, मनुष्य की सारी जिंदगी उसी में फँसी रहती है। स्त्री और पुरुष के आकर्षण और सम्मिलन में जहाँ तक प्रकृति का चिरंतन तथ्य है वहाँ तक तो बुद्धिवादी कोई विरोध नहीं करता लेकिन जहाँ तक ऊपरी आडम्बर और ढकोसले हैं, प्रियतम और प्रेयसी की रंगीन दुनिया और रंगीन स्वर्ग के सपने हैं, थोड़ी देर के वियोग या मान में मरने जीने की जो परिपाटी है, बुद्धिवादी इन बातों पर हँस पड़ता है। अब उसके हँसने का यह मतलब लगाया जाता है कि वह सदाचार का कायल नहीं।

यह सब मैंने इसलिये लिख दिया है कि 'संन्यासी' और 'राक्षस का मंदिर' लिख चुकने के बाद मैं इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि मेरी प्रकृति बुद्धिवाद की ओर हो चली है। बुद्धिवाद किसी तरह का हो, किसी कोटि का हो, समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता। बुद्धिवाद में शूगर कोटेड कुनैन की व्यवस्था है ही नहीं। वह तो सीधा सत्य है। उसका घाव गहरा तो होता है लेकिन अङ्ग-भङ्ग करने के लिये नहीं, मवाद निकालने के लिये, हमारी प्रसुप्त चेतना को जगा कर हमारे भीतर नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिये। योगियों का मत है कि विचार की शृङ्खला अनंत आकाश में क्षोभ और कंपन पैदा करती है, बुद्धिवाद स्वतंत्र विचार की स्वतंत्र धारा है। यह जीवन का अनंत वेग और अनंत प्रकाश है। अगर संयोग से कला के मूल में बुद्धिवाद की धारणा हुई तो कला को एक प्रकार का अक्षय आधार मिल जाता है, एक प्रकार का ऐसा आधार जिसमें मनुष्य और उसके अनन्त वातावरण को हिला देने की शक्ति है। हाँ, हिला देने की और इस हिलने में केवल मनुष्य के मनोवेग या अस्थायी लालसाएँ ही नहीं हिलतीं, बल्कि उसमें वह सब जो उसका आधार है- एक साथ ही हिल उठता है, उसकी चेतना क्षुब्ध होकर उसके चारों ओर फैल

जाती है जीवन का कारागार खुल जाता है वह अपनी सीमा का अतिक्रमण कर अपने से बहुत ऊँचे पहुँच जाता है। यही बुद्धिवाद है। यही कला है।

इन दिनों हमारे समालोचक साहित्य या कला के भीतर सब से पहले यह खोजने लगते हैं कि इन चीजों में लोकहित का उपदेश या सदाचार की व्याख्या कहाँ और किस रूप में हुई है। सदाचार का नाम लेकर कला के विषय में इस तरह के लोग बहुत कुछ कह जाते हैं, हालाँकि सदाचार का नाम भी ये इसीलिये लेते हैं कि इन्हें कला के विषय में कहना तो आता नहीं। अब कुछ न कुछ तो कहना होगा ही। इसीलिये सदाचार की बात चलती है। सत्य बोलो, चोरी न करो, ईश्वर की पूजा करो, इसी तरह की बातें कुछ इधर-उधर कर लंबे शब्दों और लंबे वा..रों में कही जाती हैं। लेकिन इन बातों से कला का संबन्ध? कलाकार इस तरह का उपदेशक तो नहीं है? वह जो कुछ भी कहता है या कहना चाहता है, उसके निजी प्रयोग और अनुभव की बातें होती हैं। क्या होना चाहिए या क्या नहीं होना चाहिए? इन बातों का सवाल तो यहाँ नहीं उठता। यहाँ तो जो है, है। कला अपने शुद्ध रूप में इस तरह के नियमों से परे है। वह तो अनन्त के इस पार से उस पार होने वाले धूमकेतु की तरह है। संभव है उसका वेग उपयोगी हो, यह भी संभव है कि उसमें किसी तरह की प्रत्यक्ष उपयोगिता न हो यहाँ तक कि विश्व की प्रचलित परिपाटियों में वह हानिकर भी हो उठे। लेकिन वह वेग है, प्रवाह और अग्नि है। वह स्वर्ग से उतरता हुआ प्रकाश है और इसीलिये पवित्र है, इसीलिए उपयोगी है। वह उस सूर्य की तरह है जो न सदाचारी है और न दुराचारी, न नास्तिक है और न आस्तिक। वह वह है, जो है। उसका काम है विस्तार के अंधकार को प्रकाशित कर देना। और यही काम कला का है। जीवन का सम्पूर्ण-अशेष कला के पर्दे में छिपा रहता है। इसलिये वह अनंत सहानुभूति है जिसकी एकनिष्ठ दृष्टि में न्याय की दुनिया बसती चलती

है, लेकिन तब जब उस कला का आधार बौद्धिक विवेक और जागरण होता है, व्यक्तिगत मनोवेगों का रुदन, ज्वर और संन्निपात नहीं। जब सारे संसार का दुख कलाकार का दुख और सारे संसार का सुख कलाकार का सुख होता है जब जीवन की नदी उसके रक्त से लाल हो उठती है जब उसकी अपनी आत्मा विश्व की आत्मा में मिलकर लय हो जाती है।

आज के अधिकांश कलाकार जब अपने काँपते हुए हाथ और वासना से जर्जर आत्मा के सहारे कला का निर्माण करने चलते हैं तब अपने व्यक्ति के हँसने में और रोने में, जीने में और मरने में, और जागने में सुन्दर शब्द और सुन्दर वाक्य समाप्त कर डालते हैं और कला के मंदिर के नाम पर जिस भवन का निर्माण करते हैं उसमें, अतृप्त वासनाओं और नग्न मनोवेगों की शराब चलती रहती है फल यह होता है कि चेतना यदि सदैव के लिये नहीं तो बहुत दिनों के लिये सो जाती है। विचारों की कमी के कारण इन्हें रोना खूब आता है और रोते ही रोते लोगों में ये उन बीमारियों को पैदा कर देते हैं जिन्हें हम कह सकते है प्रयत्न की ओर से भय, उपभोग की ओर आँख मूँदकर दौड़ना, वासना-मय हृदय और विचार, उनकी संकीर्ण मनुष्यता यह सब जो उनके जीवन बल को पीछे खींचता है, जो उनकी कर्तृत्व शक्ति को मार डालता है। अफीम के नशे में उनके मस्तिष्क को अधमरा कर देते हैं, फिर तो उनको मालूम रहता है कि उसके बाद ही मृत्यु है, लेकिन वे इसे मानते नहीं; मुझे तो यही कहना है कि जहाँ मृत्यु है, वहाँ कला नहीं। कला तो जीवन का वसन्त है। सत्य की ओर से आँखें मूँदकर उपभोग की ओर दौड़ना आनंद को और दूर कर देता है। लेकिन यहाँ तो सत्य और आनंद दोनों को छोड़कर, दुनियाँ उपभोग की ओर बढ रही है और इसका सब से बड़ा साधन हो रहा है कला का व्यापार। यह चाहे और जो कुछ हो लेकिन कला तो नहीं है। केवल कला या साहित्य के ही क्षेत्र में नहीं; उपभोग की यह भावना समाज-सेवा या सुधार के क्षेत्र में

भी काम कर रही है। आज के सुधारक या समाज सेवक विचित्र प्रकार के विनोदी प्राणी हैं यह जो कुछ भी कहते हैं बस तबियत खुश करने के लिये, अपनी क्षमता के प्रदर्शन के लिये। जीवन की गहरी तह तक पहुँचने का प्रयत्न तो दूसरी बात है, वे तो एक बार आँख खोल कर ईमानदारी के साथ उसकी ओर देखते भी नहीं। सदाचार के नाम पर जितना शोर ये मचाया करते हैं, किसी तरह भी उस सदाचार से भिन्न नहीं होता जिसकी शिक्षा छोटे दर्जे के विद्यार्थियों को विद्यालयों में दी जाती है। कला और साहित्य में भी इस तरह के व्यक्ति वही सदाचार खोजते हैं। विस्तृत दृष्टिकोण और संक्षोभ्य हृदय से विचार करने का अवसर तो उन्हें मिलता नहीं, इसलिये कला और साहित्य में जहाँ कहीं जीवन की भीतरी विभूतियों का उद्‌घाटन होता है या विराट जीवन का निर्माण होता है, ये घबड़ा उठते हैं। उसकी धारणा भी इन्हें असह्य हो उठती है। इब्सन ने कहा था "जिसे अपनी कला में जीवित रहना है, उसके भीतर कुछ और होना चाहिए, उसकी साधारण प्रतिभा से कुछ विशेष व्यापक भावनाएँ और व्यापक शोक, जोकि उसके जीवन को भरकर एक ओर घुमा दें, अन्यथा वह सृष्टि तो नहीं कर सकता, हाँ पुस्तकें लिखता रहेगा।" कला के मूल में जब तक जीवन की व्यापक भावना नहीं रहती वह पूरी भी नहीं हो पाती। कला की सफलता जीवन को पकड़ लेने में, उसमें मिल जाने में है, उससे विद्रोह करने में नहीं।

मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ? इस संबंध में कहा तो बहुत कुछ जा सकता है, लेकिन मैं उतना ही कहूँगा जितने में कि प्रस्तुत नाटक की भूमिका का काम भी चल जाय और मेरे संबंध में पाठकों के हृदय से मिथ्या धारणाएँ भी न उत्पन्न हों। मिथ्या धारणाओं की बात मैं इसलिये कह रहा हूँ कि 'संन्यासी' और 'राक्षस का मंदिर' की आलोचना करते समय एक आलोचक ने लिख दिया था "पर यदि मिश्रजी भी अनीश्वरवाद की ओर बढ़ रहे हों तो दूसरी बात है" इन्हीं की देखा-देखी कुछ और सज्जनों ने भी ऐसी ही बातें कुछ हेर-फेर के साथ कह दी थीं।

ईश्वर संबंधी मेरे जो विचार हैं, उन्हें मैं अपने ही तक रखना चाहता हूँ, इसलिये कि उन विचारों का संबंध केवल मेरे व्यक्तित्व और मेरी आत्मा से है, उनके भीतर मेरा निजत्व इस हद तक व्याप्त हो चुका है कि उनका अलग करना भी मेरे लिये एक कठिन काम होगा। इसके अतिरिक्त ईश्वर के संबंध में बहस या तर्क करना भी मेरी समझ में नास्तिकता या उससे कहीं बुरी संस्कारहीनता है। मैं नास्तिक हूँ या आस्तिक मेरे कहने से नहीं बनेगा। इस संबंध में मैं अपने अंतर्जगत से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देता हूँ, इस आशा में कि संभव है इन पंक्तियों से मेरी उस मित्र मण्डली को मेरी धार्मिक धारणा का पता चल सके जिसने कि हँसते-हँसते नास्तिक बना कर मुझे एकदम जीवन-मुक्त कर देना चाहता था!

"वह उपासना कभी न बाहर होवे अंतरतल की,
नहीं समायेगी अंतिम सीमा में भी इस थल की।
जो कुछ आकर स्वर्ग बना है इस जगती में मेरा,
इस उपासना ने ही उसको है चिर दिन से घेरा॥

और

जिसकी पूजा में ये मेरे बीत चुके दिन इतने,
आज अयाचित वर देने आया वह मुझको कितने।
नहीं चाहता मैं वर लेकर तजना अपने मन से,
इस अनादि पूजा को उलझी रहे सतत जीवन से॥

कुछ और आगे बढ़ कर

जीवन सागर के उस तट पर अपने सुंदर जग की,
सृष्टि अनोखी की है तूने जहाँ न रेखा मग की।
नीचे सिंधु भर रहा आहें हँसते नखत गगन में,
सब से दूर जल रहा दीपक तेरे भव्य-भवन में॥

...ा मेरे सपोवन से

> विश्व-विभव, अंतर्विभूति, उत्सर्ग-मिलन को मेरे,
> कब तक चलते और रहेंगे जग के सपने घेरे ?
> उतर न आओ तुम किरनों से होकर जग के स्वामी !
> मैं चल पडूँ, भुला जीवन की ममता अंतर्यामी !

मेरे कृपालु मित्रों को मेरे जीवन की गतिविधि से या मेरे हृदय के संगीत से (जिसका थोड़ा बहुत आभास इन ऊपर की पंक्तियों से मिल सकता है) इस बात का पता लगा लेना चाहिये कि मैं नास्तिक हूँ या आस्तिक। सच बात तो यह है कि उन्हें इसके पता लगाने की भी कोई ज़रूरत नहीं है। उसका पता लगाना या पता लगाने की कोशिश करना भी एक प्रकार का अपराध होगा। इसलिये कि वह सत्य तो मन और वचन से परे की वस्तु है, उसकी पहचान, तो होती है आत्मानद या अनुभूति से

> यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
> आनन्दो ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कदाचन।

और उसके बाद मनुष्य भय और संशय से निवृत हो जाता है। धार्मिक विश्वास का मूल जैसा कि लोगों को भ्रम है, बाहरी व्यवस्था में नहीं है और न तो इस बात में है कि हमारे आस-पास लोग किस देवी-देव की पूजा करते हैं- कौन कौन व्रत रखते हैं या किस विधि से ध्यान करते हैं। मेरे मस्तिष्क और मन में शायद कोई ऐसी बात है जोकि मुझे धर्म की प्रदर्शिनी के भीतर पैर भी नहीं रखने देती। भिन्न-भिन्न धर्मों में उपासना की जो प्रचलित प्रणालियाँ हैं उन्हें मैं केवल नियमन कह सकता हूँ, साधारण लोगों की दुनियादारी में इन बातों से लाभ हो सकता है—लेकिन जहाँ बुद्धिवाद का यह अटल सिद्धान्त आ पड़ता है "मैं स्वयं अपनी कोटि का हूँ" वहाँ धर्म और ईश्वर की भावना भी व्यक्ति की ज़िम्मेदारी पर ही छोड़ देनी चाहिए। धर्म का निर्णय किसी विशेष मत की मौन स्वीकृति या जन्म

और जाति की मर्यादा में नहीं हो सकता। ऐसा करना तो जान बूझ कर आध्यात्मिक कारागार बनाना होगा। धार्मिक संस्कृति का सामुद्रिक रूप सदैव उनके लिये होता है जिनकी कल्पना स्वतंत्र व्यक्तित्व या स्वतंत्र चिंतन की ओर नहीं पहुँचती, जिनका अपना कोई रास्ता नहीं होता, जिनके विवेक का अंत इसी में है 'जिधर सब चलेंगे उधर हम भी'। सच्चा धर्म और सच्चा प्रकाश तो वह दशा है जहाँ पहुँच जाने पर, अधर्म या अंधकार से फिर भेंट न हो। आत्मा अनुभूति की वह दशा जहाँ सुख, दुःख, प्रेम, घृणा, प्रकाश, अंधकार या जीवन और मृत्यु का भेद मिट जाता है, मनुष्य द्वैत की माया से निकल जाता है। कहीं पढ़ने में आया था, हमारी जातीय संस्कृति का शायद सुनहला सवेरा था। कोई ब्राह्मण अपनी तपस्या में बहुत दिनों से लीन था, भूख, प्यास, इच्छाएँ, वासनाएँ एक एक कर सब छूट चुकी थीं। जिस किसी ने देखा, ब्राह्मण देख पड़ा, जैसे तपस्या का साकार स्वरूप। देवता विस्मित हो उठे, साधक सिहर उठे। अप्सराओं का शृंगार फीका पड़ गया। माया के फंदे शायद टूट गये। लेकिन ब्राह्मण चाहता क्या था? मुक्ति? नहीं। तब? दिग्विजय। ब्राह्मण का अहंकार जाग उठा। उसने सोचा त्रिलोक में उससे बड़ा तपस्वी कोई नहीं? उसने असाध्य साध्य किया। उसके आगे किसी की गति नहीं। ब्राह्मण का अहङ्कार उग्र होता गया। उसे देख पड़ा जैसे उसके तप के तेज से सूर्य का प्रकाश मंद पड़ रहा है, वायु की गति मंद हो रही है, सृष्टि थरथरा रही है। यह अहङ्कार, पतन का तूफ़ान था। आकाशवाणी हुई 'ब्राह्मण तेरा गर्व मिथ्या है किस बात पर तेरा अहङ्कार इस तरह क्षुब्ध हो उठा? तुझ से बड़ा तपस्वी मिथिला का राजा जनक है। जा उसके यहाँ और उससे उपदेश ग्रहण कर'। ब्राह्मण बाध्य था। आकाशवाणी हुई थी उसे जाना पड़ा। भाँति भाँति के संकल्प और विकल्प, संदेह और शङ्का उसके भीतर उठती रहीं। राजभवन के फाटक पर पहुँचते ही सुनाई दी हुई महाराज भीतर बुला

रहे हैं। ब्राह्मण ने सोचा यह राजा क्षत्रिय होकर द्वार पर आये हुए ब्राह्मण का स्वागत स्वयं नहीं करता। और यह तपस्वी—ब्राह्मण से श्रेष्ठ तपस्वी? आकाशवाणी की सचाई में भी सन्देह होने लगा। अंतपुर में पहुँच कर ब्राह्मण ने देखा राजा पलंग पर अपनी स्त्री के साथ बैठा है, वासना और विनोद की सामग्री......यह क्या? राजा ने तो ब्राह्मण के सामने स्त्री का चुम्बन कर लिया मर्यादा की इतनी महान अवहेलना? क्षण भर के लिए ब्राह्मण की आँखे शायद घृणा और क्षोभ से बन्द हो गई। दूसरे ही क्षण जो कुछ देखा अपूर्व था ब्राह्मण सिहर उठा। शायद उसके पैरों के नीचे से पृथ्वी खिसकने लगी। राजा जनक का एक हाथ स्त्री के गले में था और दूसरा था धधकत हुई अंगीठी पर। हाथ जल रहा था, चर्बी फूट रही थी, हड्डियाँ चटक रही थीं। शरीर से जितनी साधना और तपस्या हो सकती थी सब ब्राह्मण ने समाप्त कर दी थी। इस तरह की तपस्या तो उसने नहीं की, लेकिन यह शरीर की नहीं आत्मा की तपस्या थी। राजा जनक ने कहा "ब्राह्मण यही मेरी तपस्या है। न तो स्त्री के चुम्बन या सहवास का मेरी आत्मा को कोई सुख है और न इस अंगीठी पर जलने का दुःख। मेरी आत्मा सुख, दुःख से परे है। तुम ब्राह्मण हो और मैं क्षत्री हूँ या मैं राजा हूँ और तुम तपस्वी हो इस तरह के सांसारिक भेद आत्मानुभूति के रास्ते में रुकावट पैदा करते हैं।"

यही महान धर्म है। यही महान सदाचार है। यह स्वतंत्र आत्मा का स्वतंत्र प्रकाश है। यहाँ भ्रम नहीं है, भुलावा नहीं। आत्म-अनुभूति और आत्मप्रकाश, इसी में सब कुछ है, ईश्वर भी सदाचार भी, जीवन की अपूर्णता मिट जाती है, पूर्णजीवन और अनंत जीवन दार्शनिक रहस्य न रह कर प्रत्यक्ष सत्य हो जाते हैं। यह आध्यात्मिक समन्वय या सामञ्जस्य बुद्धिवाद का महान धर्म है। यह आवश्यक नहीं कि बुद्धिवाद सदैव तर्क के सहारे खड़ा रहे। जो लोग बुद्धिवाद को पश्चिम से आई हुई कोई भयंकर बीमारी समझते हैं, वह भूल करते हैं। संपूर्ण

उपनिषत् साहित्य और वेदांत मीमांसा इसी बुद्धिवाद पर अवलंबित है। उपनिषदों में जिस व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आध्यात्मिक सहिष्णुता या व्यापकता पर बल दिया गया है, वह यदि बुद्धिवाद नहीं तो है क्या? इसी मतलब में मैं अपने को बुद्धिवादी कहता हूँ। धर्म में, साहित्य में, कला में और सदाचार में मैं उन्हीं बंधनों को मान सकता हूं, जो सदैव से हैं जो हमारे ही रक्त और हमारी प्रकृति से पैदा होते हैं, जो चिरंतन हैं इसलिये उपयोगी हैं। हमारा विवेक जिनके साथ समझौता कर लेता है, हमारे व्यक्तित्व के विकास में जो किसी तरह की रुकावट नहीं पैदा करते।

मेरा धर्म और सदाचार तो रचयिता का धर्म और सदाचार है। मैं तो समझता हूँ कि जब तक साहित्यकार अपनी सीमा को पार कर, अपने सुख, दुख से ऊँचे उठ कर, संसार में जो कुछ है पाप, पुण्य, सदाचार, दुराचार, धर्म, अधर्म विष और अमृत, सब को समझ नहीं लेता, सब का अनुभव नहीं कर लेता तब तक उसे व्यापक और सनातन आधार नहीं मिल सकता। वे विधान जो अक्षय और अनंत हैं सामने नहीं आ सकते। इसलिये जीवन की कोई भी संकीर्ण परिपाटी, धर्म या सदाचार की कोई भी निश्चित कसौटी, साहित्य और कला की कोई भी प्रभावशालिनी व्यवस्था आँख मूँद कर स्वीकार कर लेना यही नहीं व्यक्तिगत विकास में बाधा डालेगी, एक प्रकार से घातक भी होगी। घातक इसलिये होगी कि रचना के नए उपकरणों के साथ उसका मेल नहीं हो सकेगा। यह बात मैं परिवर्तन की आंतरिक एकता में विश्वास रखता हुआ लिख रहा हूँ, कोई यह न समझ ले, कि मैं जीवन को केवल परिवर्तन समझ रहा हूँ। परिवर्तन की आंतरिक एकता सत्य भेद नहीं होने देती (लेकिन यह तो कभी होता भी नहीं) इसका काम है रूप भेद करना और इसलिये मैं लिख रहा हूँ कि "रचना के नए उपकरणों के साथ उसका मेल नहीं हो सकेगा।" बुद्धिवाद को यह तो मालूम है कि जो सत्य है सदैव आधुनिक है, लेकिन उसे व्यक्त करने के सभी तरीके

आधुनिक नहीं हैं। इसलिये बुद्धिवाद को जब किसी सत्य की अभिव्यक्ति करनी होती है तो वह वातावरण और परिस्थिति का ध्यान रखते हुए सत्य की अभिव्यक्ति करता है।

जो लोग यह समझते हैं कि बुद्धिवादी केवल संहार कर सकता है, निर्माण करना उसका काम नहीं, वे जगत और सृष्टि के मूल में ही मिथ्यावाद और भ्रम का आरोप करते हैं। सृष्टि का मेरुदण्ड शायद उनकी समझ में चेतना और प्रकाश का नहीं बना है। उनकी दृष्टि अज्ञान और अंधकार के आगे नहीं बढ़ सकती। मनुष्य की सृष्टि यदि इस अनादि सृष्टि की छाया से ही निर्मित होती है तो उसके मूल में चेतन है अचेतन नहीं। इसी चेतन को हम बुद्धिवाद कहते हैं। इस समय और सीमा के निर्धारित जगत में हम जो कुछ देखते हैं जो कुछ सुनते हैं, जो कुछ अनुभव करते हैं, उसे हम सिर झुका कर स्वीकार कर लेते हैं। यह साधारण बात है। लेकिन जब हम उसकी तात्विक विवेचना करते हैं। उसे हर पहलू से उलट-पलट कर देखना चाहते हैं तब हमें भावना के जगत से निकल कर विवेक के जगत में जाना पड़ता है। तब हमारी जंजीरें उतनी कड़ी नहीं रहतीं, कभी-कभी तो टूट जाती हैं। हमारा दृष्टिकोण विस्तृत हो उठता है, संसार जैसे विवेक और सहानुभूति से भर उठता है। मनुष्य अपने सुख-दुख का उत्तरदायी स्वयं है। यदि वह विचार करे तो उसकी कठिनाइयाँ बहुत कुछ कम हो सकती हैं। बुद्धिवाद इस रहस्य को स्पष्ट कर देता है। सभ्यता की जटिलता के साथ ही साथ मनुष्य का जीवन भी जटिल होता जा रहा है। समाज और साहित्य में, धर्म और सदाचार में, उखाड़ने और बैठाने की क्रिया चल रही है। मनुष्य रूढ़ियों के अंधकार से निकल कर विवेक के प्रकाश में आ रहा है। लोग समझ रहे हैं कि बीते जमाने में धर्म और सदाचार के नाम पर भयंकर अधर्म और भयंकर दुराचार हो गए थे। इसलिये यह युग बुद्धिवाद की वकालत कर रहा है। हममें जो सब से साधारण है उसकी आत्मा में भी असीम बल है। तब? उदारता और सहिष्णुता!

या एक शब्द में सहानुभूति । चेस्टर्टन ने कहा है "साहित्य का उद्देश्य जीवन का प्रतिरूप खड़ा करना नहीं, उसमें सहानुभूति भरना है।" टालस्टाय और रोम्यांरोलां, अनातोले फ्रांस और बर्नर्डशा इसीलिये सफल हो सके हैं। उनके चरित्रों में, उन चरित्रों की भलाई, बुराई में धर्म और अधर्म में मानव हृदय की सहानुभूति स्पष्ट देख पड़ती है। इसलिये बुराई करने वाला हमारे हृदय को जितना आविर्भूत करता है उतना ही आविर्भूत करता है भलाई करने वाला भी! बुराई और भलाई के मेल से ही तो ज़िंदगी बनी है। बुद्धिवाद में बुराई और भलाई की परिभाषा ही भिन्न है। जीवन की व्याख्या मे बुराई और भलाई रात और दिन की तरह मिली है और यही सत्य है।

जहाँ तक मैं समझता हूँ बुद्धिवाद हमारे यहाँ कोई नई चीज नहीं है। हमारे संस्कार का आधार ही बुद्धिवाद या विवेक जनित प्रवृत्ति है। यूरोप में यह प्रणाली ज़रूर नई है। रोमांटिक लेखकों ने यूरोप में शब्दों के सपने में जीवन की सचाई की ओर से आँखें बंद कर भावनामय भ्रमवाद या मिथ्यावाद का प्रचार किया था। साहित्य और कला के नाम पर संभव और असंभव सब कुछ एक कर डाला था। इसके प्रति विद्रोह की धारणा उठी। इब्सन के नाटकों में सब से पहले ज़िंदगी की बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या शुरू हुई और उसके बाद बुद्धिवादी लेखकों की नामावली बढ़ने लगी बाहरी उपकरणों का उपहास कर भीतरी प्रवृत्तियों की चर्चा चली। साहित्य और जीवन के बीच में जो खाई थी उसे भर कर "जीवन के स्वर में" साहित्य का निर्माण होने लगा। कुछ लोगों का मत है कि पाश्चात्य सभ्यता के नाश के दो महान कारण रहे हैं, पहला बर्नर्डशा और दूसरा विगत महायुद्ध। विगत महायुद्ध ने यूरोप की सैनिक क्षमता और भौतिक शक्ति का नाश कर दिया। बर्नर्डशा ने यूरोप की मानसिक और सामाजिक संतुलन का नाश कर दिया। बात यह है कि यूरोप में मनुष्य का जीवन इतना कृत्रिम और भावना प्रधान हो गया था कि बर्नर्डशा के व्यंग्य इसे खोखला कर बैठे। यह

काम यूरोप में बर्नर्डशा की बौद्धिक कला ने किया। यूरोप का दुराचारमय गंदा जीवन, लेकिन साथ ही साथ नैतिक ढोंग बर्नर्डशा के लिये असह्य हो उठा। उन्होंने जो कुछ था, जैसा था साफ़ कर दिया! पाश्चात्य सभ्यता के आकर्षक पर्दे के भीतर कितनी बुराइयाँ थीं, कितना खोखलापन था, बर्नर्डशा ने खोल कर दिखला दिया। आज यूरोप में एक ओर तो वह महर्षि हैं, दूसरी ओर भयंकर प्रवृत्तिवादी, सदाचार और धर्म की जड़ काटने वाले, स्वर्ग और नरक की मिथ्या भावना मिटाने वाले। ख़ैर यही तो जगत है। यही जीवन है। हमारा मतलब यहाँ बर्नर्डशा से नहीं, उस बुद्धिवाद से है जो हमारे साहित्य के उन समालोचकों की नज़र मे बदनाम हो रहा है, जिनकी भावुकता भयंकर है, लेकिन विवेक दयनीय!

हमारे साहित्य में निर्माण होने लगा है। लक्षण तो शुभ हैं लेकिन अभी समझदारी की जरूरत है। ग्येते ने कहा था "रचयिता के लिये सब से पहली बात है स्वास्थ होना, अगर वह बीमार है तो उसे स्वस्थ होकर कलम उठाना चाहिए और "स्त्रियाँ साहित्य और कला के साथ जो चाहें कर लें लेकिन पुरुषों को तो संयम के साथ काम लेना ही होगा।" हमारे लेखकों को ग्येते का यह कहना समझ लेना चाहिए। साहित्य और कला में अपनी बीमारियों को दिखला देना हमारे लिये अच्छा नहीं है। जिस कमी को हम अपने जीवन में अनुभव कर रहे हैं, वह साहित्य का विषय नहीं है। उसे मार डालना होगा! कोई रोचक कथा गढ़ कर उसे नीचे ऊपर से जला देना, फूंक देना बुरा है। हमारे साहित्य में अधिकांश यही हो रहा है। हमारे लेखक तानसेन की रचना करने चलते हैं, लेकिन भावावेश में रास्ता भूल जाते हैं और नूरजहाँ का निर्माण कर बैठते हैं। प्रतिमा की सफलता जीवनबल के अनुसार नापी जाती है। कला के अपूर्ण यत्न से जीवन का जला देना ही कला है। जीवन के वे सत्य जो हैं, सामने लाये जायें, शेष छोड़ देना चाहिए। अपने भीतरी विकारों और वासनाओं को सजाकर साहित्य का

स्वर्ग बना देना गंदा है। नैतिक महत्त्व अनुभव करने में और संयम करने में है। प्रेम के नाम पर साहित्य में जो देखने को मिल रहा है वह प्रेम की हत्या और वासना का नृत्य है। हमारे लेखक प्रेमी और प्रेमिका को पकड़ कर साहित्य की सड़क पर नंगा छोड़ देते हैं। प्रेम के लम्बे-लम्बे व्याख्यान झाड़े जाते हैं, हँसना रोना बहुत होता है, असंगत और असंभव का विचार नहीं रहता, सब कुछ होता है, लेकिन वह नहीं होता जिसे जीवन कहते हैं। स्वाभाविक जीवन की स्वाभाविक धारणा न होने की वजह से कल्पित जीवन की कल्पित पहेली हमारे विवेक को मंद कर देती है। यहाँ मुझे बोथोफ़ेन का एक वाक्य याद पड़ रहा है "यदि हम जीवन के प्रवाह को जीवन की मर्ज़ी पर छोड़ दें, तब तो फिर सर्वोच्च के लिये क्या शेष रहेगा"। लेकिन यहाँ जीवन की मर्ज़ी समझने की कोशिश नहीं हो रही है सर्वोच्च तो अभी बहुत दूर की चीज़ है।

मेरा अपना अनुभव जहाँ तक है, लेखक की सब से बड़ी चीज़ उसकी भावुकता नहीं उसकी ईमानदारी है वह साधक है, दलाल नहीं। जीवन की प्रयोगशाला [जैसा कि मैंने राक्षस का मंदिर की भूमिका में भी लिखा था] के बाहर साहित्य या कला की विभूतियाँ नहीं मिल सकतीं। "कला की चरम सीमा" जैसा कि मोशिये रोलाँ ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'चौदहवीं जुलाई' की भूमिका में लिखा, या "कल्पना के साथ नहीं जीवन के साथ है।" हमारे अधिकांश लेखक ज़िंदगी की ओर से आँखें बंद कर कल्पना और भावुकता का मोह पैदा कर जिस नये जगत का निर्माण कर रहे हैं उसमें ज़िंदगी की धड़कन नहीं है। मनुष्य की आत्मा की बात कौन कहे वहाँ तो मनुष्य का रक्त मांस भी नहीं मिलता! शायद मोम के रँगे पुतलों से लेखक जो चाहता है कराता है, लेखक जब चाहता है पुतला हँस देता है, रो देता है, व्याख्यान देने लगता है या प्रेम करने लगता है- उसकी अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। कल्पना का जीव कल्पना के आगे नहीं

बढ़ता। वास्तविक जगत के साथ उसका कोई संबंध नहीं लेकिन वास्तविक जगत की व्याख्या साधारण चीज नहीं कि हर कोई कलम पकड़ने वाला उसे सम्हाल सके। यह काम तो उसका है जो महादेव की तरह विष पान कर मृत्युञ्ज हो सके, यही काम है इस युग के कलाकार का या जैसा कि मैंने संन्यासी की भूमिका में लिखा था तत्व-दर्शी कलाकार का। ऐसे समय में जब कि साहित्य में झूठी भावुकता और गंदे मनोवेगों का तूफान चल रहा है, साहित्य और कला के नाम पर विकारों की सजावट हो रही है, "तत्वदर्शी कलाकार" यह मैं क्या कह रहा हूँ? आज नहीं, इसका पता कल चलेगा मैं क्या कह रहा हूँ। जीवन वह सत्ता नहीं, जिसकी छुरी हमारे कलेजे के पार न हो जाय। किसी न किसी दिन यह जरूर होगा। जिंदगी की व्यवस्था में क्षमा तो किसी को मिलती ही नहीं। इसके साथ जो जितनी ही ईमानदारी से साथ पेश आता है, उसकी यातनाएँ उतनी ही उग्र होती हैं। रचयिता का उत्तरदायित्व ईश्वर का उत्तरदायित्व है अपनी एकांत साधना में अपनी ही आत्मा का अनुसरण करना लेखक के लिये विशेष उपयोगी होता है। संसार की कैसी छाप उसकी आत्मा पर पड़ रही है, सचाई के साथ उसे यही दिखला देना है, इसके आगे तो वह कुछ कर भी नहीं सकता, लेकिन इतना कर देने पर उसके लिए फिर कुछ शेष नहीं रह जाता।

साहित्य या कला व्यसन नहीं, आवश्यकता है, मनुष्य के हृदय की, मस्तिष्क की और आत्मा की। जीवन का विकास ज्यों-ज्यों होता है, कला की आवश्यकता भी उसी परिणाम में बढ़ती जाती है। यह आवश्यकता ऐसी नहीं है जो हटाई जा सके या जिसके बिना भी काम चल सके। अपनी अपूर्णता मिटाने के लिये मनुष्य जिस रास्ते की खोज सदैव से करता आया है, वह रास्ता इसी कला के भीतर से होकर गया है। इस रास्ते में दुर्लंघ्य पर्वत हैं, भयंकर नदियाँ हैं, अगाध समुद्र हैं, सुंदर झरने हैं, बसंत के फूले उपवन हैं, शरद् के तालाब हैं, हरे भरे मैदान

हैं, और धू-धू करते हुए मरुस्थल भी हैं। कलाकार को यह सारा रास्ता तै करना है, उसकी सफलता कहीं पहुँच जाने में नहीं सब कुछ पार कर जाने में है। हाँ, सब कुछ पार कर जाने मे और तभी उसकी कला समय और सीमा का अतिक्रमण कर शास्वत और सनातन हो सकेगी। इसलिये मैंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि कलाकार की सबसे बड़ी विभूति उसकी ईमानदारी है। जो है नहीं उसकी कल्पना करना या जैसा है नही वैसा दिखला देना, रोज़गार या सभ्यता की नज़र से उपयोगी चीज़ हो सकती है, लेकिन जीवन और सचाई की नज़र में तो वह केवल हानिकर नहीं, संहारक भी है। संहारक इसलिये कि उससे ज़िंदगी के समझने की कोई बात नहीं होती। उसमें कोई ऐसी बात नहीं होती जिसे पकड़ कर हम कह सकें 'पा गए, पा गए, जिसकी खोज में पड़े थे पा गए'।

कला की कोई भी चीज़ मनुष्य के हृदय में अपने लिये कितनी जगह बना लेती है, उसका कितना अंश मनुष्य का अपना अंश हो उठता है मनुष्य के रक्त और मांस में मिल जाता है, यही असल चीज़ है। यही कला की सफलता है। और इसी चीज को मैं कलाकार की ईमानदारी कह रहा हूँ। यह ईमानदारी भावावेश या रोमेंस में नहीं मिल सकती क्योंकि वहाँ तो जीवन की व्याख्या नहीं मिथ्या सजावट है। जो दिल और दिमाग़ के कमजोर हैं, बच्चे की तरह जो पकड़ना सब कुछ जानते हैं, लेकिन छोड़ना कुछ भी नहीं उनके फुसलाने की बातें हैं। कलाकार की बौद्धिक अभिव्यक्ति अथवा दूसरे शब्दों में तात्विक मीमांसा समस्याओं और सिद्धांतों, जीवन और जगत की भिन्न-भिन्न वस्तुओं की व्यक्तिगत अनुभूति और प्रवृत्ति के आधार पर निराकरण, सुविधा और शासन के नाम पर अंधविश्वास और मिथ्या परंपरा की वे बातें, जो हैं नही या होती नहीं या जिनकी वजह से मनुष्य का स्थायी कल्याण होना असंभव है, उसका पर्दा उठा कर उनकी असलियत खोल देना मेरी समझ में ईमानदारी है। वह

जो कुछ देखता है अपनी आँखों से देखता है उसका अपना मन उसे किस रूप में ग्रहण कर रहा है, उसकी आत्मा पर उसका कैसा प्रभाव पड़ रहा है, उसे कह देना है; संभव है संसार का फैसला उसके प्रतिकूल हो, यह भी संभव है; लोग उस पर दोषारोपण करें, उसके संबंध में संदेह और शंकाएँ की जायँ, लेकिन उसे तो अपनी जगह से विचलित नहीं होना है, उसका आधार हिलाया नहीं जा सकता।

यहाँ तक तो रचना के सिद्धान्तों की बात रही है। जहाँ तक मेरा अपना अनुभव और विश्वास है मैंने कम से कम शब्दों में व्यक्त किया है। लेकिन मैं अपने नाटक की भूमिका लिख रहा हूँ, और इस संबंध में अभी कुछ विशेष नहीं कहा गया। 'राक्षस का मंदिर' और 'संन्यासी' में पुरानी परिपाटी के छोड़ने का प्रयत्न मैंने किया था। पुरानी परिपाटी से मेरा मतलब द्विजेंद्रलाल राय की नाट्य परिपाटी से है जिसका प्रभाव हमारे नाटकों पर बहुत बुरा पड़ा है। हमारे जो कुछ इने-गिने नाटक इधर प्रकाशित हुए हैं सब में दुर्भाग्यवश द्विजेंद्रलाल राय को आदर्श मान कर लेखकों ने कागज रँगा है। द्विजेंद्रलाल राय ने नाटकों में बंगाल का शेक्सपियर बनना चाहा था और बंगाली आलोचकों की भयंकर भावुकता और दयनीय विचार हीनता के कारण उन्हें कुछ समय के लिये वह पद मिल भी गया। जिस युग में यूरोप के नाटककार शेक्सपियर के नाटकों को मनोविज्ञान और यथार्थ के प्रतिकूल कह कर एक नया रास्ता निकाल रहे थे, बौद्धिक अभिव्यक्ति और मनोवैज्ञानिक मीमांसा का वह रास्ता जिस पर इब्सन से लेकर इस युग तक के सभी श्रेष्ठ नाटककार चलते रहे हैं और चलते ही रहेंगे, उसी युग में शेक्सपियर के अनुकरण पर हमारे देश में भावुकता की एक गंदी प्रवृत्ति फैल गई और उस गंदी प्रवृत्ति के सब से बड़े प्रतिनिधि द्विजेंद्रलाल राय हुए। कालेज के दिनों में जब मैं शेक्सपियर को पढ़ता था मुझे ऐसा कई बार बोध हुआ कि द्विजेंद्रलाल राय ने अनुकरण के आधार पर ही भारत के आधुनिक नाट्य साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया वह अनुकरण कहाँ तक श्रेयस्कर हुआ

यह बात विचारणीय है। यों तो द्विजेंद्र की नाट्यकला में साधारण समझवालों के लिये सब कुछ है, प्रेम, हत्या, घृणा, सुख, दुख, त्याग, वीरता और कायरता जिस हद तक द्विजेंद्र ने दिखलाया है इस युग का कोई भी नाटककार नहीं दिखला सका। लेकिन यह सब होते हुए भी द्विजेंद्र की सारी सृष्टि मिथ्या और असंभव के आधार पर हुई है। मनुष्य चरित्र में या तो उन्हें केवल दैवी देख पड़ा या केवल राक्षसी' या तो केवल प्रकाश देख पड़ा या केवल अंधकार। विरोधी उपकरणों का द्वंद्व या सामञ्जस्य दिखलाना उनकी शक्ति के परे की चीज है। उनका संपूर्ण साहित्य शब्दों और वाक्यों का साहित्य है, जीवन के साथ कहीं भी मेल नहीं खाता। चरित्रों के निर्माण में द्विजेंद्र के लिये भले और बुरे दो ही रास्ते हैं जो चरित्र भला है अंत तक भला है उसका तेज कभी मंद नहीं पड़ता और जो चरित्र बुरा है अंत तक बुरा है भलाई कभी भूल कर भी उसके पास नहीं फटकती। लेकिन यह मिथ्या है। जीवन और जगत के साथ इसका कोई संबंध नहीं। द्विजेंद्रलाल राय से बढ़कर अंतःकरण का अंधा साहित्यकार मेरी दृष्टि में दूसरा नहीं आया। द्विजेंद्र के 'दुर्गादास' में गुलनार दुर्गादास से कहती है

गुलनार क्या मुझसे नफ़रत करते हो? मेरा कहना तुमको मंजूर नहीं? दुर्गादास! मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि गुलनार घुटने टेककर भीख की तरह किसी से प्यार नहीं माँगती वह दुआ की तरह अपना प्यार बाँटती है। पसंद कर लो बेगम गुलनार का प्यार या मौत?

दुर्गादास पसन्द कर लिया, मैं मौत चाहता हूँ।

गुलनार मौत? अच्छा यही सही मैं अपने हाथ से तुम्हारी जान लूँगी। गुलनार से एक चीज़ पाओगे मोहब्बत या मौत। अगर मोहब्बत नहीं चाहते तो मरने के लिये तैयार हो जाओ। कामबख़्श!

[गुलनार के पुत्र कामबख़्श का प्रवेश]

गुलनार कामबख़्श मारो! इसे मारो। इसी दम मार डालो देख क्या रहे हो! मारो!

कामबख्श क्यों अम्मीजान ? बादशाह के हुक्म के...

गुलनार बादशाह का हुक्म ? मेरे हुक्म पर बादशाह का हुक्म ! इसी दम मारो । क्या मेरा कहना न मानोगे ? (चिल्ला कर) मारो मारो मारो !

इस कथोपकथन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर अपना समय नष्ट करना मैं नहीं चाहता। विवेकशील पाठक समझते होंगे कि प्रेम के संबंध में कहना या व्याख्यान देना कितना असंभव है। उसी प्रेम के नाम पर द्विजेंद्र ने कितनी असत्य बातें गुलनार के मुँह से कहला दीं। यह सब कितना असत्य और कितना असंभव है। गुलनार या तो दुर्गादास को अपना प्रेम दे सकती है या मौत। वाह ! धन्य गुलनार और धन्य द्विजेंद्रलाल राय। लेकिन मैं तो ऊपर कह आया हूँ कि द्विजेंद्रलाल का साहित्य शब्दों का साहित्य है उसमें असलियत का नाम भी नहीं और जहाँ असलियत नहीं, वहाँ आदर्श हो भी नहीं सकता। द्विजेंद्र के प्रत्येक नाटक में, प्रत्येक पृष्ठ में, इस तरह की असम्भव और असंगत बातें भरी पड़ी हैं। द्विजेंद्र की कथा को वास्तविक जगत या वास्तविक जीवन से कोई मतलब नहीं। इस अंधे और विवेकहीन नाटककार के कारण हमारे देश का आधुनिक नाट्य साहित्य कितना कलुषित हुआ है, कितना कागज़ और कितनी रोशनाई व्यर्थ फेंकी गई है, कितनों का रास्ता भूल गया है कहा नहीं जा सकता। द्विजेंद्र के अनुवाद जब से हिंदी में प्रकाशित हुए स्वर्गीय बाबू हरिश्चंद्र के नाटकों को बच्चों का खिलवाड़ कह कर हमारे साहित्यकारों ने दूर फेंक दिया। द्विजेंद्र का शब्दों और वाक्यों का तूफान नाट्य-कला का आदर्श बन बैठा और जहाँ देखिए हिंदी के नए नाटकों में वही द्विजेंद्रवाली बनावटी भाषा और बनावटी भावुकता, सुख, दुख, प्रेम, घृणा, जय और पराजय के झूठे चित्र बनने लगे। कुछ लोगों को इस बात का खेद है कि हिंदी में द्विजेंद्र की कोटि का नाटककार अभी पैदा नहीं हुआ मेरा कहना यह है कि द्विजेंद्र की कोटि तो शेक्सपियर की कोटि भी इस बंगाली नाटककार की आत्मा के ऊपर शेक्स-

पियर का भूत आसन जमाए बैठा था। जमाना बदल गया। द्विजेंद्र की मिथ्या भावुकता और रोमेंस की गंदगी की ओर से आँखें फेर कर हमें स्वतन्त्र और व्यक्तिगत साधना की ओर झुकना चाहिए। अगर हमें निर्माण करना है तो और यदि केवल पुस्तकें लिखनी हों तब तो द्विजेंद्रसे अच्छा होगा शेक्सपियर का अनुकरण करना। हिंदी नाटकों पर से जब तक द्विजेंद्र का प्रभाव बिलकुल नष्ट नहीं हो जायेगा तब तक हमारे साहित्य में अच्छे नाटकों का निर्माण होना संभव नहीं।

'संन्यासी' और 'राक्षस का मंदिर' लिखते समय मैंने जो प्रयोग प्रारंभ किया था वह इस नाटक 'मुक्ति का रहस्य' में आकर पूरा हुआ है। इसमें जैसा कि पढ़ने पर मालूम होगा— कुल तीन दृश्य और तीन अंक हैं। एक अंक में केवल एक दृश्य है। बार बार पर्दा गिराना और उठाना रंगमंच को अस्वाभाविक बना देता है। रंगमंच का संगठन ऐसा होना चाहिए कि दर्शकों को ऐसा न मालूम हो कि हम लोग किसी अजनबी जगह में या किसी जादूघर में आ गए हैं। जिस स्वाभाविकता के साथ हम अपने घर में रहते हैं उसी स्वाभाविकता के साथ हमें रंगमंच पर भी रहना है अथवा दूसरे शब्दों में रंगमंच और हमारे स्वाभाविक निवास में कोई बहुत विशेष अंतर नहीं व्यक्त होना चाहिए। कला का काम है जीवन को जगा देना। इस कारण इस युग में रंगमंच की स्वाभाविकता पर बहुत ध्यान दिया जाने लगा है।

इस नाटक में गीत एक भी नहीं है। सम्भवतः कुछ लोग सोचेंगे कि नाटक बिना गीत के कैसे होगा? मेरी राय में नाटक में गीत रखना कोई बहुत जरूरी नहीं है। कभी-कभी तो गीत समस्याओं के प्रदर्शन में बाधक हो उठते हैं। इस युग में नाटक का उद्देश्य मनोरंजन की भेहूदी धारणा से आगे बढ़ गया है। जीवन की जटिलता और गूढ़ रहस्यों को खोलकर दिखलाने का काम आज दिन नाटकों द्वारा जितनी सुगमता से हो सकता है, साहित्य के किसी भी अन्य विभाग से उस सुगमता के साथ नहीं हो सकता। रंगमंच के ऊपर कृष्ण भी गा रहे हैं

शिव भी गा रहे हैं, दुर्गा भी गा रही हैं, गणेश भी गा रहे हैं यह अच्छा नहीं है। नाटक मे गीत का पक्षपाती मैं वहीं तक हूँ जहाँ तक इसे जीवन मे देख पाता हूँ। जिस किसी चरित्र का स्वाभाविक झुकाव मैं संगीत की ओर देखूँगा, उसके द्वारा दो चार गीत गवा देना मैं ठीक समझूँगा। 'संन्यासी' में किरणमयी की अभिरुचि संगीत की ओर है...वह अपनी आंतरिक विभीषका को संगीत के पर्दे में ढक कर रखना चाहती है इसीलिये उसे कभी-कभी मौके बे मौके गाने का जैसे रोग हो जाता है. लेकिन 'राक्षस का मंदिर' और 'मुक्ति का रहस्य' मे मुझे कोई चरित्र ऐसा नहीं मिला जो गाना चाहता हो...इस कारण इन दोनों नाटकों में एक भी गीत नहीं आ सका।

अभिनय के संबंध मे भी मैं स्वाभाविकता पर बल देना चाहूँगा। तोते की तरह रटे हुए शब्दों को रंगमञ्च पर दुहरा देना ठीक नहीं होगा। मुंह से जो शब्द निकलें उनके साथ ही साथ शरीर के अंगों का संचालन भी ऐसा होना चाहिए कि जो आपस में सामंजस्य स्थापित कर रंगमंच पर मनुष्य की स्वाभाविक जिन्दगी दिखला दें अथवा हमारा नित्य का जीवन जैसा है रंगमंच का जीवन उसके साथ मेल खा सके। इसी कारण मैंने स्वगत की प्रणाली को अस्वाभाविक समझ कर छोड़ दिया है। पात्रों की भीतरी भावनाओं और प्रवृत्तियों को व्यक्त करने में जितना सहायक मूक अभिनय होता है...उतना स्वगत नहीं। मनुष्य के भीतरी भाव एकांत में भी उसकी भावभंगी चेहरे की आकृति या कभी-कभी किसी तरह का काम कर देने में व्यक्त होते हैं, चुपचाप कुर्सी पर बैठकर, चारपाई पर लेटकर या जमीन पर खड़ा होकर व्याख्यान देने में नहीं। मनुष्य ऐसा कभी करता ही नहीं। दो हिस्सा स्वगत और एक हिस्सा वास्तविक कथोपकथन करा देने में नाटक का लिखना तो सरल हो उठता है, लेकिन नाटकत्व बिगड़ जाता है, अभिनय की ज़रूरत नहीं रहती। कोई पात्र किसी दूसरे पात्र को प्रेम करता है, प्रेमी अपने कमरे की दीवाल से

या अपनी संदूक से प्रेमिका का चित्र निकाल कर उसे चुपचाप ध्यान से देखता है, उसे छाती से लगा लेता है या उसको चूम लेता है यह हुई मूक अभिनय की बात। दूसरी ओर वह दर्शकों के सामने खड़ा होकर कहने लगता है 'तुम्हें पता नहीं, मैं तुम्हें हृदय के एक-एक बूँद रक्त से प्रेम करता हूँ. इहलोक परलोक से प्रेम करता हूँ, जीवन और मरण से प्रेम करता हूँ, मेरे जीवन की अनन्त ज्योति! मेरे हृदय की पवित्र मूर्ति.... इत्यादि'। स्वगत की इस प्रकार की शब्दावली जीवन के साथ मेल नहीं खाती। जहाँ कहीं स्वगत ऐसी वस्तु की जरूरत पड़ी है मैंने मूक अभिनय से काम लिया है इसलिये कि ऐसी वस्तु जीवन में प्रायः मिला करती है, लेकिन स्वगत ऐसी वस्तु तो नितांत अस्वाभाविक है। सचाई कहने की नहीं करने की वस्तु है।

प्रयाग, चैत्र शुक्ल ७ }
सं० १९८९ विक्रम }

लक्ष्मीनारायण मिश्र

उन्नीस वर्ष बाद

यह नाटक 'मुक्ति का रहस्य' प्रायः उन्नीस वर्ष बाद, इस संस्करण के लिये मुझे फिर पढ़ना पड़ा है। इन उन्नीस वर्षों में हिन्दी साहित्य के सभी अंग पुष्ट हुए हैं। नाटक में भी यह विकास स्पष्ट है। जिस समय यह नाटक लिखा गया था, द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का प्रभाव हिन्दी नाटकों पर बहुत अधिक पड़ चुका था। 'प्रसाद' ने अपने नाटकों में द्विजेन्द्र का अनुकरण किया। उनके कथानक भारतीय इतिहास के अतीत गौरव पर आधारित हैं, पर अपने चरित्रों के निर्माण में सब कहीं इस देश का जीवन-दर्शन वे बराबर छोड़ते गये हैं। कवि कालिदास को अपने नाटक स्कन्दगुप्त में उन्होंने एक चरित्र बनाया है पर उनसे यह भी सोचते न बना कि कालिदास के युग के चित्रण में कालिदास के साहित्य का भी ध्यान रखें। इस नाटक की भूमिका "मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ" में, उस समय जो कुछ लिखा गया मैं, अब स्वीकार करता हूँ वह मेरा बुद्धिवाद नहीं था। कहना मुझे यह था कि साहित्य और कला में पश्चिम का अनुकरण न कर हमें अपने भावलोक का अनुसरण करना है। अतिरंजित और काल्पनिक साहित्य न लिखकर जीवन के स्वर में साहित्य का निर्माण करना है। यही बात यदि इस तरह कही गई होती कि पुराने संस्कृत साहित्य की मान्यताओं से छूटकर हम अपने पूर्वजों से छूट रहे हैं तो अधिक अच्छा होता, पर अब जो हो गया मेरे मिटाये न मिटेगा।

उस भूमिका के शीर्षक से स्वर्गीय आचार्य शुक्लजी भी चौंके और तब जो अपने इतिहास में उन्होंने लिख दिया "नाटक का जो नया स्वरूप लक्ष्मीनारायणजी योरप से ले आये हैं" कितना सत्य है यही देखना है। यूरप के संसर्ग के कारण हमारी ऊपरी वेश-भूषा में जिस

प्रकार कुछ परिवर्तन आया है या जिस प्रकार स्वयं शुक्लजी अंग्रेजी कोट पहनकर काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाते थे, उतना ही ऊपरी प्रभाव मेरे नाटकों पर पश्चिम का पड़ा है। ऊपरी आकार-प्रकार, भाषा, संवाद, व्यंग्य आदि पर अवश्य ही थोड़ा प्रभाव इब्सन और उसके बाद के नाटककारों का मेरे नाटकों पर पड़ा है, पर भीतरी भावलोक उनका भारतीय है, कालिदास और भास की परम्परा में है। इब्सन ने पश्चिम के नाटक साहित्य में जो नई बातें पैदा की थीं और जिस पर सभी पश्चिमी नाटककार अब तक चलते आ रहे हैं, वह यूरप के लिये नई थी, पर भास के नाटकचक्र का पता जिन्हें है वे जानते हैं कि इस देश के साहित्य में, भरतमुनि ने लोकवृत्ति के अनुकरण का जो सिद्धान्त अपने नाट्य शास्त्र में रक्खा था उसी पर यहाँ के कवि और नाटककार चलते रहे। लोक-वृत्ति कल्पना से बनाई नहीं जाती। यह काम तो यूनानी शोकान्तिकाओं में किया गया, शेक्सपियर के नाटकों में कल्पना से लोकवृत्ति पढ़ी गई है, द्विजेन्द्र और 'प्रसाद' ने शेक्सपियर के अनुकरण पर यही काम किया है। लोकवृत्ति अनुभवसाध्य है और सारे संस्कृत साहित्य में यह सत्य कहीं भी नहीं छूटा है।

यूरप से वस्त्र ले आने का अभियोग मुझ पर लगाया जा सकता है पर आचार्य शुक्ल ने यह नहीं देखा कि वस्त्र का अनुकरण उतना बड़ा अपराध नहीं है जितना बड़ा अपराध है आत्मा का अनुकरण। भारतीय संस्कृति के 'उन्नायक' 'प्रसाद' शेक्सपियर के उत्तराधिकारी हैं कि कालिदास के? उन्हें देखना यह था। शेक्सपियर के नाटकों के साथ जब प्रसाद के नाटक रखे जायेंगे तब स्वगत की वही अतिरंजना, वही संवादों की काव्यमयी कृत्रिमता, मनोविज्ञान या लोकवृत्ति के अनुभव का वही अभाव, संघर्ष और द्वन्द की वही आँधी। प्रेम के नाम पर वासना और कर्म की जगह आत्महत्या वाला पलायन दिखाई पड़ेगा। जो व्यापार संस्कृत नाटकों में कहीं भी न देख पड़े, वे सभी, 'प्रसाद' के नाटकों में कहाँ से आ गये? भास और कालिदास की परम्परा में आत्महत्या को

स्थान नहीं मिली है। इस देश के जीवन-दर्शन में मृत्यु अन्त नहीं नया आरम्भ माना गया था और शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही यहाँ पूर्वजन्म की धारणा थी। जीवन के संयोग में दैवी और आसुरी दोनों प्रवृत्तियों को मानकर आसुरी प्रवृत्ति के निग्रह की बात कही गई थी।

कला का प्रधान धर्म जहाँ मृत्यु से रक्षा है और जीव जहाँ ब्रह्म का अंश है वहाँ सृष्टि के मूल में ही आनन्द और कल्याण अभिप्रेत है। हमारी संस्कृति में जीवन का लक्ष्य, प्रयोजन और आधार आनन्द है। दूसरी ओर यही सब यूरप में विषाद, अतृप्ति और निराशा है। आचार्य शुक्ल ने मेरे उन नाटकों में यूरप का अनुकरण देखा जिनमें इस देश के जीवन दर्शन की मान्यतायें नहीं बिगड़ीं और 'प्रसाद' को वे नाटकों में उन सारे व्यापारों की छूट दे गये जो सब ओर से विदेशी हैं। कला और साहित्य के माध्यम से जो जीवन की जय न बोलकर मृत्यु की जय बोलता रहा, जिसके नाटक दुःखान्त और मानसिक विकारों से ग्रस्त हैं आचार्य शुक्ल की दृष्टि उस पर न पड़ी यही विस्मय है।

हमारे संस्कृत कवि और नाटककार व्यक्ति न होकर विभाग बन गये थे। महर्षियों ने जीवन का जो अनुभव किया उसे ही वे लोक में साहित्य के रूप में देते रहे। इसीलिये हमारे पुराने साहित्य में साहित्यकार अपनी निजी लालसाओं, वासनाओं और अभाव की अग्नि में नहीं जलता। इस सृष्टि के रचयिता की तरह वह भी अपनी सृष्टि में अनासक्त है। प्रसाद के नाटकों में जितनी आत्महत्यायें कराई गई हैं उन सब का कारण यही है कि 'प्रसाद' को अनासक्त कवि कर्म का पता नहीं था। अश्रुपूजक और अपने सञ्चित कर्मों से भाग निकलनेवाले चरित्रों को उन्होंने आदर्श बनाकर आत्महत्याओं की लड़ी बना दी। ईशावास्य की वाणी उनके कानों में कभी नहीं पड़ी थी!

असुर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसा वृत्ताः
तत्र प्रेत्याभिगाच्छन्ति ये के चात्म हनो जनः ॥

भारतीय जीवन-दर्शन के सबसे बड़े पाप, कर्म के फल भोग से

भाग निकलनेवाली कायरता आत्महत्या को आदर्श बनाकर 'प्रसाद' ने भारतीय संस्कृति का उन्नयन किया ? सम्भव है हमारे वे आलोचक जो 'प्रसाद' को भारतीय संस्कृति का उद्धारक समझते रहे हैं अपने विचारों को बदलें और अपने अतीत साहित्य के उस स्वस्थ और प्रसन्न मुख को देखें जिसमें व्यक्ति की वासना और एकांगी स्वार्थ में आत्मघात जैसी जघन्य भावना की एक भी रेख नहीं।

नाटक के सिद्धान्त पर पहले संस्करण की भूमिका में मैंने जो कुछ लिखा था उससे मैं आज भी सहमत हूँ। मुझे सन्तोष है श्री धूर्जटि-प्रसाद मुकर्जी ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ 'माडर्न इण्डियन आर्ट' में इस नाटक का उल्लेख कर इसे प्रगतिशील साहित्य में स्थान दिया है। साहित्य और कला के सारे निर्माण अपने युग विशेष में सदैव प्रगतिशील रहे हैं। कालिदास के ग्रन्थ उस युग में प्रगतिशील थे इसी बल पर महाकवि ने कहा 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' और रामचरित मानस भी अपने युग में प्रगतिशील रहा। इस नाटक के बाद हिन्दी में जितने नाटक लिखे गये उन सब में भाषा, संवाद, व्यापार और मनोवैज्ञानिक परिस्थिति की स्वाभाविकता पर ही ध्यान दिया गया है। 'प्रसाद' की पद्धति हिन्दी नाटक के क्षेत्र में अब मर चुकी है। इतना अवश्य है कि नाटकों में माँ के लिये ममा और बाप के लिये पपा भी लिखा जाने लगा है। अमेरिका के क्राइम ड्रामा का भी प्रभाव हिन्दी नाटकों पर पड़ने लगा है। इसका कारण केवल पश्चिम का प्रभाव नहीं संस्कृत साहित्य से परिचित न होना भी है। नये वस्त्रों में, कोट, पैन्ट और टाई में भी जिस प्रकार अभी हम भारतीय हैं उसी प्रकार साहित्य के नये रूपों में भी अच्छा होगा हम भारतीय बने रहें। साहित्य में व्यक्तिवादी या अस्तित्ववादी बनकर उन मनोवेगों को न धरें जो हमारे किशोर स्वप्न के पंखों पर उड़ते रहते हैं, जिनके दबा देने में हमारा संयम है, पर जिनमें बह जाना ही हमारा और हमारी कला का पतन भी है। कीचड़ के कमल की तरह काम-भावना में ही कला का जन्म होता

है। काम की कलियों में ही कला के फूल आते हैं। कला और रति-कामना एक ही साथ व्यक्ति की किशोरावस्था मे पैदा होती है। इसकी जानकारी हमारे पुराने कवियों को थी। इसीलिये वे साहित्य में व्यक्ति-वादी नहीं रहे। इसीलिये वे साहित्य और कला के क्षेत्र में अनासक्त रहे। वाल्मीकि, कालिदास और तुलसीदास के साहित्य में उनके व्यक्ति की आसक्ति नहीं है पर 'प्रसाद' और इस युग के बड़े से बड़े साहित्यकार के साहित्य में है यही पश्चिम का प्रभाव है और इसी से अब हमें बचना है।

प्रयाग, ज्येष्ठ शुक्ल ५
सं० २००७ वि०

लक्ष्मीनारायण मिश्र

पुरुष पात्र

उमाशंकर शर्मा

मनोहर	:	उमाशंकर का लड़का अवस्था ८ वर्ष
त्रिभुवननाथ	:	उमाशंकर का मित्र, डाक्टर
वेनीमाधव	:	उमाशंकर का मित्र, वकील
काशीनाथ	:	उमाशंकर का चचा
देवकीनंदन	:	मनोहर का अध्यापक
मुरारीसिंह	:	टाउन स्कूल का हेडमास्टर
जगाई	:	उमाशंकर का नौकर

स्त्री पात्र

आशादेवी

पहला अंक

[सड़क के किनारे दुमंजिला बँगला। बँगले से सड़क तक थोड़ीसी ज़मीन। उसमें छोटा-सा बगीचा। सड़क से बँगले तक पतली सड़क। उस पर उभड़े हुए कंकड़ और घास। बँगले की सड़क के दोनों ओर फूलों के पौदे। फूलों का क्या कहना, पौदों की पत्तियाँ भी सूख रही हैं। बँगले के सामने जो ज़मीन है उसके चारों ओर छोटी-सी चहारदीवारी है। चहारदीवारी से लगाकर केले के पेड़ लगाए गए हैं। लेकिन उन्हें देखकर मालूम होता है कि आसमान से जो पानी गिरता है उसे छोड़कर साल भर उन्हें कोई दूसरा पानी नहीं मिलता। यहाँ तक तो बगीचे की हालत बँगले की ओर देखने से यों तो बँगले की बनावट अच्छी है, खिड़कियाँ और दरवाजे अच्छी लकड़ी और अच्छे शीशे के हैं, दीवालें भी जहाँ तक देख पड़ती हैं रँगी हुई, लेकिन जैसे इधर वर्षों से उसकी सफ़ाई और सफेदी, रँगाई या पालिश नहीं हुई है। सुन्दर चीज़ें भी बेमरम्मत या लापरवाही के साथ रक्खी जाने से भयंकर हो उठी हैं। ऐसी हालत इस बँगले की है। इस बँगले को देखते ही इसमें रहनेवालों की दशा पर, मनुष्य में जो सबसे बड़ी कमजोरी या सबसे बड़ा विकार है जिसे साधारण मनुष्य की भाषा में दया या सहानुभूति कहते हैं, जाग उठती है।

साँझ हो रही है। डूबते हुए सूरज की किरनें बँगले के ऊपर वाले कमरों के दरवाज़ों और खिड़कियों के शीशे पर पड़कर चमक पैदा कर रही हैं। गर्मी का दिन है। इसलिये शाम होने पर भी अभी गर्मी कम नहीं हुई है। चारों ओर सन्नाटा-सा मालूम होता है। सामने की सड़क पर कभी-कभी मोटर, टाँगे या इक्के की आवाज़ होती है। बँगले के नीचे एक कोने का दरवाज़ा खुलता है और एक व्यक्ति बाहर निकलता है। आज-कल जैसी कि लोगों की कहने की आदत हो गई है, यह व्यक्ति भारत का भावी

सैनिक है। प्रायः तीस वर्ष की अवस्था, न बहुत लम्बा, न बहुत छोटा मझोले क़द का, न बहुत मोटा, न बहुत पतला, साधारण स्वस्थ शरीर, न बहुत गोरा, न बहुत काला, बिल्कुल भारतीय रंग, गांधी टोपी, खद्दर का कुरता, धोती, पैर में चट्टी। भारत के भावी नेताओं का जो वेश आज-कल चारों ओर देख पड़ता है बिल्कुल वही। यह व्यक्ति दरवाज़ा लगा कर बाहर निकलता है, इतने ही में ऊपर आवाज़ होती है]

आशादेवी

"सुनिए तो शर्मा जी, उमाशंकर जी!"

[इस व्यक्ति का नाम उमाशंकर शर्मा है। शर्माजी ने १९२१ में अच्छे नंबरों के साथ एम० ए० पास किया था। डिप्टी कलक्टरी में आपका नामिनेशन भी हो गया था। लेकिन आपने असहयोग की लहर में इस्तीफ़ा दे दिया और दो वर्ष के लिये जेल गए।]

[उमाशंकर शर्मा बाहर खड़े होकर देखने लगते हैं। कुछ देर के बाद-]

शर्माजी

क्या है? मुझे देर हो रही है।

[ऊपर के कमरे का दरवाज़ा खुलता है और एक युवती भी बाहर खुली छत पर आकर खड़ी होती है। देवी का नाम आशादेवी है। सुंदर, कोमल, आकर्षक, जिनकी आँखें बाहरी आवरण के भीतर नहीं पैठ सकतीं उनके लिये जो कुछ चाहिए सब कुछ। बहुत बारीक खद्दर की साड़ी किनारों पर छपी हुई। खुले हुए अस्त-व्यस्त बाल। देखने से मालूम होता है कि आधुनिक सभ्यता की लहर में देवीजी बहुत दूर तक बह गई हैं। आपकी आँखों में संकोच नहीं है। बोलने में आपकी ज़बान कभी रुकती नहीं।]

आशादेवी

क्षमा कीजियेगा......मैंने समझा शायद आपने मेरी बात नहीं सुनी, और चले गए।

उमाशंकर

कुछ कहना है.....आपको?

आशादेवी

जी नहीं......यों ही......हाँ, आप लौटेंगे कब ! किस काम से...

उमाशंकर

ठीक नहीं कह सकता। कल चुनाव है। देखूँ लोगों की मनोवृत्ति क्या है ! आप भी कहीं जाना चाहतीं......

आशादेवी

सिनेमा......लेकिन नहीं......शायद आप देर......

उमाशंकर

आपके साथ मैं शायद न चल सकूँ। पता नहीं कब तक लौटूँ तब तक...आप चले जाइएगा। मनोहर को भी साथ ले लीजिएगा।

[उमाशंकर का प्रस्थान। आशा थोड़ी देर तक वहाँ खड़ी रहती है जब उमाशंकर सड़क तक पहुँच जाते हैं, तब लौटकर कमरे के दरवाज़े पर खड़ी होती है।]

आशादेवी

मनोहर......मनोहर......इधर चलो।

[कमरे में दरवाजे के पास एक-कुर्सी खींच कर उधर को मुँह कर बैठती है। उसके सामने कमरे के बीच में एक छोटी-सी मेज और उसके आस-पास में तीन और कुर्सियाँ रक्खी हैं। उसके सामने की दीवाल में एक दरवाजा है जिसके बाहर नीचे जाने के लिये सीढ़ी बनी है। उसकी दाईं ओर की दीवाल में भी एक दरवाजा है जिसकी दूसरी ओर उमाशंकर का कमरा है। (मनोहर का सामने के दरवाजे से प्रवेश) मनोहर सीधे आशा के पास न आकर कमरे में इधर-उधर देखता है जैसे कुछ पता लगाना चाहता है फिर तेजी से दूसरा दरवाजा खोलकर उमाशंकर के कमरे में जाता है। मनोहर उमाशंकर का लड़का है। इसकी उम्र इस समय आठ वर्ष की है।]

मनोहर

(उसी कमरे में ताली बजाता है, शोर करने लगता है) कुरता,

टोपी कुछ नहीं...कुछ नहीं...बाबूजी चले गए...बाबूजी चले गए। (उस कमरे से निकल कर फिर दूसरे दरवाजे से भाग जाना चाहता है।)

आशादेवी

सिनेमा चल रही हूँ...मिठाई भी खिलाऊँगी, तमाशा भी दिखलाऊँगी।

[मनोहर दौड़कर आशा के पास आता है, कभी उसका हाथ पकड़कर खींचता है तो कभी उसका कपड़ा पकड़कर...]

मनोहर

कब चलोगी ?...चलो...अभी चलो !

आशादेवी

(उसके सिर पर हाथ रख कर) अभी नहीं घंटे भर बाद। जब रात होगी।

मनोहर

हूँ... तब तो मैं सो जाऊँगा ! चलो...अभी-अभी चलो।

आशादेवी

अच्छा यह तो बतलाओ मैं तुम्हारी कौन हूँ ?

मनोहर

तुम बताओ।

आशादेवी

मैं तुम्हारी माँ हूँ। आज से मुझे माँ कहना।

मनोहर

हूँ...वह तो मर गई। मर गई।

आशादेवी

कौन कहता है ? अपने बाबूजी से पूछ लेना मैं तुम्हारी माँ हूँ या नहीं ?

मनोहर

नहीं हो। मेरी माँ नहीं हो। वह तो मर गई। बाबूजी तो कहते हैं मर गई। और मुझे भी याद है उस दिन दोपहर को (कमरे के बाहर हाथ उठा कर) वहाँ वह छत पर कम्बल बिछा कर सुलाई गई थी। मुझे बुला कर उसने अपनी छाती पर बैठा लिया। उसके बाद तुमने मुझे जबरन उठा लिया···वह मेरी ओर देखने लगी···मैं रोता ही रह गया···तुमने मुझे जाने नहीं दिया···वह भी रोने लगी। (ऊपर हाथ उठा कर) फिर वह आसमान की ओर देखती ही रह गई। लोग उसे उठा ले गये। फिर वह नहीं आई। तुम मेरी माँ नहीं हो। वह मुझे दूध पिलाती थी। अपने साथ रात को लेकर सोती थी।

आशादेवी

मैं भी तो तुम्हें दूध पिलाती हूँ···अपने साथ लेकर सोती हूँ।

मनोहर

तुम तो मुझे गाय का दूध पिलाती हो। अपना दूध तो नहीं पिलाती···

आशादेवी

(मुस्करा कर) मेरा दूध पीओगे ?

मनोहर

नहीं तुम्हारा नहीं···किसी का नहीं। मुझे दूध पिलाना होता तो वह मरती क्यों ? (उसकी आँखों से आँसू गिरने लगते हैं)

आशादेवी

(अपने अंचल से उसकी आँख पोंछ कर) चुप रहो। चलो तुम्हें सिनेमा ले चलूँ।

मनोहर

वह गई कहाँ ? फिर नहीं आएगी ?

आशादेवी

नहीं, जो जाता है, फिर नहीं आता। वह भगवान के दरबार में गई

है। वहाँ कोई मरता नहीं। किसी को कोई दुःख नहीं होता।

मनोहर

तब तो वहीं...चलो वहीं चलें। तुम भी चलो...मैं भी चलूँ। बाबूजी को भी ले चलो। वहाँ माँ से भेंट होगी। हम सब लोग साथ रहेंगे। मैं वहाँ भागूँगा नहीं। उसी के साथ रहूँगा।

आशादेवी

तुम वहाँ भी भागोगे। शैतानी करोगे।

मनोहर

नहीं...वहाँ...नहीं भागूँगा...शैतानी नहीं करूँगा। जो कहेगी वही करूँगा। चलो...वहीं चलो। कब चलोगी?

आशादेवी

नहीं अभी नहीं! जब बुड्ढी हो जाऊँगी। बीमार पड़ूँगी...तब...

मनोहर

तो अभी बीमार पड़ो न। बता दो बीमार कैसे पड़ा जाता है। मैं बीमार पड़ कर चला जाऊँ...

आशादेवी

अभी नहीं। अभी तुम बड़े होगे। पढ़ोगे। साहब बनोगे। तुम्हारा विवाह होगा। लड़के होंगे। तब तुम बुड्ढे होगे, बीमार पड़ोगे।

मनोहर

और तब वहाँ जाऊँगा?

आशादेवी

हाँ तब...

मनोहर

(चिंतित होकर) और तुम कब जाओगी?

आशादेवी

मेरा...भी...विवाह होगा...लड़के होंगे। जब वह सब बड़े हो जाएँगे उनका...भी...विवाह होगा (अपना बाल हाथ में लेकर)

मेरा बाल सफ़ेद हो जाएगा...मैं बुड्ढी हो जाऊँगी...तब मैं बीमार पड़ूँगी और मर जाऊँगी...तब मेरे लड़के मुझे उठा कर...वहाँ पहुँचा देंगे, जहाँ तुम्हारी...माँ गई है।

मनोहर

तुम्हारे बाल सफ़ेद हो जाएँगे तब...कैसे सफ़ेद? सन की तरह? (सिर हिलाता है)

आशादेवी

हाँ सन की तरह। तुम्हारे ही ऐसे मेरे भी लड़के होंगे।

मनोहर

उनको तुम दूध पिलाओगी?

आशादेवी

(कुछ सोचने लगती है।) मनोहर! आज से तुम मुझे माँ कहो। मेरे लड़के नहीं होंगे। मैं मर जाऊँगी...तो तुम मुझे वहाँ पहुँचा देना। तुम्हारी माँ ने मुझ से कहा था...कि मैं तुम्हारी माँ बनूँ। इधर सुनो। (उसके सिर पर हाथ रख कर) तुम्हें माँ की ज़रूरत है और मुझे बच्चे की। तुम मुझे माँ कहो... मैं तुम्हें बच्चा कहूँ। कहोगे न?

मनोहर

बाबूजी से पूछ लूँ। नहीं तो मारेंगे, कहेंगे तुम्हारी माँ तो मर गई, झूठ बोलता है। उस दिन उन्होंने झूठ बोलने के लिये मारा था......

आशादेवी

और अगर नहीं मारेंगे तो तुम मुझे माँ कहोगे?

मनोहर

कहूँगा...नहीं...मैं दिन भर सड़क पर लड़कों में खेला करता हूँ। भगवती की माँ उसे पकड़ कर ले जाती है, रामदीन की माँ भी उसे पकड़ कर ले जाती है। तुम तो मुझे पकड़ने नहीं जाती। मेरी माँ तो मुझे बगीचे के बाहर नहीं निकलने देती थी। दिन भर मेरे पीछे लगी

रहती थी। वह तो मर गई...मुझे मिठाई न देना दूध न पिलाना... मैं तुम्हें माँ नहीं कहूँगा।

[आशा निराश होकर उस लड़के की ओर देखती है। जगाई का प्रवेश]

आशादेवी

क्या है जी...?

जगाई

डाक्टर साहब आपसे मिलने आए हैं।

आशादेवी

(घबड़ा कर) डाक्टर साहब?

जगाई

जी हाँ...नीचे बरामदे में खड़े हैं।

आशादेवी

कह दो शर्माजी नहीं हैं।

जगाई

कहा तो...आपसे मिलना चाहते हैं।

आशादेवी

क्यों...कह दो तबियत अच्छी नहीं है।

मनोहर

तब तो तुम भी माँ के पास जाओगी?

आशादेवी

(सम्हलकर) डाक्टर साहब के पास सूई है...मनोहर को छाप लगा दें।

मनोहर

नहीं नहीं...

[भाग जाता है। सीढ़ियों से होकर नीचे निकल जाता है।]

आशादेवी

कह दो तबियत अच्छी नहीं है। खड़े क्या हो?

[जमाई आना चाहता है। डाक्टर त्रिभुवननाथ प्रवेश करते हैं, सामने के दरवाजे से]

डाक्टर

तबियत अच्छी नहीं है...तभी तो डाक्टर की जरूरत है।

[कमरे के इस ओर आकर एक कुर्सी खींचकर आशा के पास बैठते हैं। जमाई का प्रस्थान। डाक्टर बढ़िया सूट पहने, एक हाथ में फेल्ट हैट और दूसरे में छड़ी लिये। जैसे सिविल सर्जन से मिलने निकले हों। डाक्टर साहब की दाढ़ी मूछ सफाई से बनी है। पाउडर, क्रीम और वासेटाइल सेंट इत्यादि इत्यादि बहुत-सी चीजों से यह पता चलता है कि डाक्टर साहब इस पीढ़ी के उन विकृत हृदय और विकृत मस्तिष्क युवकों में हैं, जिन्होंने कि साहब बनने के शौक में संस्कार, चरित्रबल या ऐसी सभी बातें जो मनुष्य को पशुत्व के ऊपर उठाये रहती हैं, छोड़ दिया है, जो प्रवृत्तियों के गुलाम हैं। सारांश यह कि डाक्टर साहब इस पीढ़ी के उन लोगों में हैं जिनके भीतर भारतीय पतन की चरम दशा देख पड़ती है।]

आशादेवी

इस तरह किसी के घर में चले आने का क्या अधिकार है साहब? यह कहाँ की सभ्यता है?

डाक्टर

जिस घर में रोगी रहता है उसमें डाक्टर को जाने का पूरा अधिकार है। बीमार की नजर में डाक्टर कभी सभ्य नहीं होता, क्योंकि वह उसके मन की बात कभी नहीं करता. .इसलिये वह असभ्य होता है .. पशु होता है...राक्षस होता है।

आशादेवी

(उद्विग्न होकर) लेकिन यहाँ कोई बीमार नहीं है।

डाक्टर

क्यों? आपकी तबियत खराब है न? उस नौकर से आप कह रही थीं।

आशादेवी

डाक्टर साहब न तो मेरे पास समय है और न मैं आपसे अधिक बातें करना चाहती हूँ।

डाक्टर

हूँ...

आशादेवी

कहिए। आप किसलिये...

डाक्टर

शायद आप भूल न गई होंगी। मैं बार बार नहीं कहता।

आशादेवी

अगर आप मुझे बहुत तंग करेंगे तो मैं कुएँ में कूद कर प्राण दे दूँगी। (सिर नीचे कर धरती की ओर देखने लगती है)

डाक्टर

देवीजी! प्राण ऐसी सस्ती चीज नहीं है। (उसकी ओर देख कर मुस्कराता है।)

आशादेवी

मेरा प्राण बहुत सस्ता है, अगर इसे देकर मैं और चीजों से छुट्टी पा जाऊँ तो...मेरा महाजन खुश रहे...मैं रहूँ या न रहूँ।

डाक्टर

यह तो आप अपने महाजन पर अन्याय कर रही हैं। आप अपने महाजन की ओर एक बार सहानुभूति की आँख से देखना भी नहीं चाहतीं, और कहती हैं प्राण देने के लिये। इधर देखिए (सहम कर) आपके प्राण के लिये मैं अपनी दुनियाँ छोड़ने को तैयार हूँ। जिस दिन मन हो देख लीजिए।

आशादेवी

अच्छा हो आप अपनी दुनियाँ न छोड़कर बस मुझे छोड़ दें।

डाक्टर

(सिर हिला कर) हूँ शायद आपको मालूम नहीं। आप मेरी दुनियाँ से बड़ी हैं। यह बात बहुत कहने की नहीं है...मैंने आपके लिये क्या नहीं किया...डाक्टर होकर...जिस मरीज़ की ज़िंदगी मुझे सौंपी गई थी...उसको ज़हर...ख़ैर...मैं क्या करता। मेरा कमजोर दिल...आह!

[आशा की जाँघ पर अपना हाथ रख देता है। आशा जल्दी से कुर्सी छोड़ कर दरवाज़े के पास खड़ी होती है। डाक्टर भी उठना चाहता है।]

आशादेवी

बस तुम उठे कि मैंने नौकर बुलाया। नरक के कीड़े......

डाक्टर

देवीजी! आपको पता नहीं कि आप क्या कर रही हैं! आपने दवा में मनोहर की माँ को जहर पिलाया था।

आशादेवी

अच्छा तब...

डाक्टर

मुझको लेकर...

आशादेवी

माना यह भी सही...पर इसका मतलब!

डाक्टर

इसका मतलब यह कि आपको मेरी बात माननी होगी। एक नहीं सौ बार...

आशादेवी

और अगर मैं न मानूँ?

डाक्टर

तो फिर दुनियाँ जान जायगी कि आपने क्या किया।

आशादेवी

मैं कह दूँगी, यह सब झूठ है।

डाक्टर

मेरे पास प्रमाण है...

आशादेवी

कैसा प्रमाण ?

डाक्टर

आपका पत्र। आपने लिखा है डाक्टर साहब ! मैंने आठ बूँद डाल दिया है...समझा आपने। पूरा पत्र कम से कम बीस लाइन का है।

आशादेवी

(कुछ सोच कर) कोई बात नहीं। देखा जायगा। 'किसी भी हालत में मै अपने चरित्र की पवित्रता छोड़ने पर राजी नहीं हूँ। चाहे इसका परिणाम जो हो !

डाक्टर

चरित्र की पवित्रता ! देवीजी ! यह सब बातें दुनियाँ के लिये हैं। जिसे संसार में रहना है...अपनी प्रतिष्ठा बचानी होगी।

आशादेवी

संसार के ऊपर भी कोई है...उसे ईश्वर कहते हैं...डाक्टर साहब ! उसकी दृष्टि से बच कर कोई कहाँ जाएगा ?

डाक्टर

वह संसार के ऊपर नहीं...संसार के भीतर है। और फिर वह कहने नहीं आता। उसकी कल्पना ही मनुष्य ने पाप के लिये की है और फिर यहाँ पाप और पुण्य का क्या सवाल है ? यह तो प्रकृति की बात है ! जो है वही है।

आशादेवी

मै आपसे बहस करना नहीं चाहती ?

डाक्टर

मै भी नहीं चाहता। तो फिर......

आशादेवी

तो फिर...[ऊपर—देखने लगती है]

डाक्टर

तो यही निश्चित है ! लेकिन पछताना होगा।

आशादेवी

जी नहीं...बिल्कुल नहीं। अगर आप वह बात खोलेंगे, तो आप भी जाएँगे।

डाक्टर

मैं क्यों जाऊँगा ? मैंने उसे जहर तो दिया नहीं।

आशादेवी

लेकिन आपने उसके लिये जहर तो दिया !

डाक्टर

मैंने उसके लिये नहीं आपके लिये जहर दिया था। कोई भी मेरे यहाँ से जहर ला सकता है। उसका वह कैसा उपयोग करेगा...इसका जिम्मेदार मैं नहीं।

आशादेवी

लेकिन तो जब आपको पता चला तभी आपने पुलीस को रिपोर्ट क्यों नहीं दी। इसका उत्तर क्या देंगे ?

डाक्टर

मुझे अब पता चला है। जिस दिन रिपोर्ट करूँगा उसी दिन पता चलेगा। और फिर पुलिस में रिपोर्ट करने की क्या जरूरत है। मैं शर्माजी से कह दूँगा। कहना तो होगा ही मुझे। आज तक मैंने कभी हार मानी नहीं है। इसके लिये मैं बनाया नहीं गया था। मुझे कितनी बड़ी आशा दिलाई गई थी ! आपको याद नहीं है ? आपने क्या कहा था !

आशादेवी

डाक्टर साहब ! मैं स्वयं पश्चात्ताप से मरी जा रही हूँ। उस समय मेरे मस्तिष्क में हत्या की भावना नाच रही थी। उस समय मैं मनुष्य-

योनि से उतर कर पिशाचयोनि में चली गई थी। मैंने क्या कहा था उसे भूल जाइये।

डाक्टर

एक बार आप और उसी पिशाचयोनि में उतर कर...मैं और कुछ नहीं चाहता। एक बार केवल एक बार, आप मेरी ओर उस आँख से... जिससे आपने उस दिन देखा था, देख लें...मैं समझूँगा मेरी मजूरी मिल गई।

आशादेवी

(कुछ सोच कर) अच्छा...लेकिन एक शर्त है।

डाक्टर

(उत्साह से) कहिये एक नहीं...एक लाख शर्तें...आपको पता नहीं......इन दिनों मुझ पर क्या बीत रही है। (गला भर आता है) तीन महीने हुए जिस दिन पहले पहल देखा था......(थोड़ी देर रुक कर) कभी रात को नींद नहीं आई कितनी कल्पना...मैं आपको बदनाम नहीं करूँगा। यों आपका जो मन...हाँ तो शर्त...

आशादेवी

बस...वही आठ बूँद आप मुझे भी पिला दें। मै अब अपने को सँभाल नहीं सकती। मेरा बोझ बराबर बढ़ता चला जा रहा है... उससे छुट्टी लेनी होगी। मैं किसलिये पैदा हुई थी और क्या हो गई? कहाँ जाना था...कहाँ जा पहुँची? जब कभी सोचने लगती हूँ; मालूम होता है...ओफ़, हाय रे जिंदगी हाँ, तो अधिक सोचने का समय नहीं है, कहिए स्वीकार है?

डाक्टर

और अगर स्वीकार न हो?

आशादेवी

क्यों स्वीकार नहीं होगा? आप मेरी नैतिक हत्या करना चाहते पर शारीरिक नहीं। देवता के सिर पर लात मार कर मंदिर में

आतिशबाजी करना चाहते हैं!

डाक्टर

देवता के सिर पर लात रख कर कभी चोर ने घंटा उतारा था। उसे वरदान मिला। आपको याद है या नहीं।

आशादेवी

(मुस्कराकर) तो मैं भी तो वरदान देने को तैयार हूँ, लेकिन मेरी शर्त आपको माननी होगी।

डाक्टर

आपकी शर्त मानने के लिये पत्थर का कलेजा होना चाहिए।

आशादेवी

हूँ...मेरा चरित्र...स्त्री जीवन का जो सब से बड़ा भरोसा है... उसे बिगाड़ने में डाक्टर साहब...इसके लिये भी पत्थर का कलेजा होना चाहिए। (डाक्टर की ओर देखने लगती है) मेरे कहने का आप पर असर नहीं होता। मैं आपको धोखा देना नहीं चाहती...व्यर्थ की आशा और मायाजाल में आपको रख छोड़ना ठीक नहीं है। अब आप यहाँ न आया करें।

डाक्टर

मुझे एक बार और आना होगा...शर्माजी से कहने के लिये।

आशादेवी

(उद्विग्न होकर) उनसे कहने! कहियेगा मत डाक्टर साहब! कितना बड़ा विश्वासघात होगा...मैं उनके सामने कैसे जाऊँ...वे क्या कहेंगे!

डाक्टर

मैं उनसे सब कुछ खोल कर कह दूँगा। किस तरह आप उस रात गईं। किस तरह कैसी आशा दिला कर मुझसे जहर लिया और फिर क्या क्या हुआ।

आशादेवी

कब आएँगे आप उनसे कहने!

डाक्टर

आज या कल।

आशादेवी

कुछ दिन और ठहर जाइए। मैं अपने को इसके लिये तैयार कर लूँ।

डाक्टर

(उठते हुए) मैं आपके लिये क्या नहीं कर सकता लेकिन जो होने को नहीं है...उसके लिये......

[मनोहर का प्रवेश। सीढ़ी के पास बाहर खड़ा होता है]

मनोहर

अब तो रात...रात हो रही है...चलिये न सिनेमा...

डाक्टर

आप सिनेमा जाएँगी?

आशादेवी

जी हाँ, विचार तो है। आप भी चलेंगे?

डाक्टर

चलिये न। लेकिन तब मनोहर को न ले चलिए।

आशादेवी

(सन्देह से) क्यों?

डाक्टर

इसलिये कि रात को...उसे तकलीफ...

आशादेवी

लेकिन वह मानेगा...नहीं...उससे कह दिया...

डाक्टर

कोई बहाना कर दीजिए।

आशादेवी

मनोहर! डाक्टर साहब के साथ चलोगे? उनके पास सुई है।

मनोहर

(रोता हुआ) ऊँ...नहीं...नहीं जाऊँगा। (भाग जाता है)

आशादेवी

ठहरिए, मैं कपड़े बदल आऊँ।

[आशा का प्रस्थान। डाक्टर उसकी ओर देखता रह जाता है। आशा के चले जाने पर कमरे में इधर-उधर टहलने लगता है। मेज पर हाथ रख कर नीचे देखते हुए सिर झुकाकर खड़ा होता है। उसकी आँखें बंद हो जाती हैं। मनोहर सीढ़ी के ऊपर आकर कमरे के बाहर खड़ा होता है। थोड़ी देर तक डाक्टर की ओर भय से देखता रहता है।]

मनोहर

सुई...(अपनी बाँह उठाकर टीका लगाने की जगह को बारम्बार खुशी से मलता है) नहीं...नहीं डाक्टर साहब पूजा कर रहे हैं। आँख बंद किए हैं।

[डाक्टर उसी तरह खड़े खड़े उसकी ओर देखता है]

मनोहर

पूजा कर रहे थे डाक्टर साहब ?

डाक्टर

(कुछ सोचते हुए) हाँ...

मनोहर

आप मंत्र जानते हैं ?

डाक्टर

(कुछ सोचते हुए) नहीं...

मनोहर

(ताली बजाकर इधर उधर उछलते हुए) तब पूजा किसकी कर रहे थे ? मालूम होता है आप सुई कहीं भूल गए हैं...उसी को सोच रहे थे।

डाक्टर

सुई...कैसी सुई ?

मनोहर

(अपनी बाँह उठा कर) इसमें छेदने के लिये। आपके कोई लड़का नहीं है डाक्टर साहब ? उसकी बाँह में तो आप सुई नहीं चुभाते होंगे ?

(डाक्टर उसकी ओर देख कर मुस्कराता है)

मनोहर

बतलाए। बतलाते क्यों नहीं ? आपके लड़का है ?

डाक्टर

नहीं। मैं जिस लड़के की बाँह में सुई चुभाता हूँ...उसी को लड़का मान लेता हूँ।

मनोहर

तब तो आपके बहुत से लड़के होंगे। उनको कभी मिठाई खिलाते हैं डाक्टर साहब ? वे बीमार पड़ते हैं तो दवा का दाम लेते हैं या नहीं ?

आशादेवी

(दूसरे कमरे से) शैतानी करोगे मनोहर ? इसको छाप लगाइए डाक्टर साहब।

मनोहर

अच्छी बात (डाक्टर के पास जाकर बाँह उठाकर खड़ा होता है) हाँ, लगाइए छाप डाक्टर साहब...अब मैं नहीं मानूँगा। लगाइए... लगाते क्यों नहीं ? देरी न कीजिए...मैं भी चलूँगा सिनेमा देखने।

डाक्टर

छाप लगाने पर तुम्हें ज्वर आ जाएगा।

मनोहर

(कुछ सोचकर) और मैं बीमार पड़ कर मर जाऊँगा। (ऊपर हाथ उठा कर) फिर वहाँ चला जाऊँगा...माँ के पास। (हाथ जोड़कर) हाथ जोड़ता हूँ। डाक्टर साहब ! मुझे छाप लगा दीजिए। मैं बीमार पड़ूँगा। माँ मिलेगी। मेरी माँ...(उसकी आँखों से आँसू चल पड़ते हैं।)

डाक्टर

(मनोहर के सिर पर हाथ रखकर) तुम अपनी माँ को याद करते हो मनोहर !

मनोहर

कोई अपनी माँ को भी भूल सकता है...डाक्टर साहब ! (दूसरे कमरे की ओर हाथ उठा कर) यह कहती हैं कि मुझे माँ कहो। मुझे सिनेमा दिखाने को कही थीं। मैं लड़कों से कह आया...मैं सिनेमा देखने जा रहा हूँ। अब कहती हैं, मत चलो। कल जब लड़के पूछेंगे... मैं क्या कहूँगा ! मेरी माँ कभी ऐसा करती ! मैं इन्हें कभी माँ नहीं कहूँगा।

डाक्टर

(धीरे से) हाँ, कभी न कहना।

मनोहर

कभी नहीं कहूँगा डाक्टर साहब ! मेरी माँ मर गई...मर गई... मर गई...(उसकी देह काँपने लगती है)।

डाक्टर

और अगर तुम्हारे बाबूजी विवाह करें।

मनोहर

किससे...माँ तो मर गई।

डाक्टर

किसी से...(दूसरे कमरे की ओर हाथ उठा कर) और जो इन्हीं से करें...तब तो तुम इन्हें माँ कहोगे।

मनोहर

(गर्दन टेढ़ीकर) कभी नहीं। इससे क्या ! मेरी माँ तो मर गई।

डाक्टर

लेकिन अगर तुम इन्हें माँ नहीं कहोगे तो खाने को नहीं पाओगे।

मनोहर

(कुछ सोचकर) डाक्टर साहब ! सड़क के उस पार जो अनाथालय है उसमें जो लड़के रहते हैं उनकी माँ मर गई है। मैंने कई लड़कों से पूछा है, सब कहते हैं कि उनकी माँ मर गई है। उसमें लड़कों को खाना मिलता है सबेरे दूध भी मिलता है। दिन भर खेलते रहते हैं, कोई मारता नहीं, मैं भी उसी में चला जाऊँगा।

डाक्टर

ऐं ! अनाथालय में ?

मनोहर

तो क्या ? सब लड़के तो रहते हैं...

डाक्टर

उसमें गरीब लड़के रहते हैं...जिनको घर पर खाने को नहीं मिलता।

मनोहर

अच्छा तो जब मुझे खाने को नहीं मिलेगा तो मैं भी चला जाऊँगा।

[कपड़े पहन कर आशा का प्रवेश। उसके खुले हुए बाल रेशमी फीते से बँधे हैं। साड़ी का अञ्चल बाईं ओर से घूम कर दाहिनी ओर कंधे से नीचे पीछे की ओर लटक रहा है। दाएँ कंधे पर अञ्चल चुन कर सुनहली क्लिप में समेट दिया गया है। पैर में कामदार जैपुरी जूता है। डाक्टर साहब एक बार दृष्टि दौड़ा कर उसे नीचे से ऊपर तक देख लेते हैं फिर मनोहर की ओर देखने लगते हैं।]

आशादेवी

(मनोहर से) मुझे माँ कहो तो तुम्हें लिवा चलूँगी।

मनोहर

माँ ! तुमको !...नहीं...नहीं...नहीं...

आशादेवी

(मुस्करा कर) नहीं कहोगे ?

मनोहर

कभी नहीं । मेरी माँ तो वहाँ है (ऊपर हाथ उठाता है)

डाक्टर

तुमने वहाँ कभी देखा है अपनी माँ को ?

मनोहर

हाँ, एक बार । जिस दिन वह वहाँ (कमरे के सामने खुली छत की ओर हाथ उठा कर) मरी थी और लोग उसे उठा ले गए...मैं चाँद की ओर देख रहा था...वहाँ माँ खड़ी थी और मुझे बुला रही थी । वहाँ मैं कैसे जाता डाक्टर साहब ? मैं चील होता तो वहाँ उड़ कर चला जाता । तब से मैं बराबर चाँद की ओर देखता हूँ माँ नहीं आती ।

डाक्टर

तुमसे नराज है ।

मनोहर

इसीलिये तो मैं किसी को माँ नहीं कहता...नहीं वो और नाराज हो जाएगी, हो जाएगी न ?

डाक्टर

(अन्यमनस्क होकर) हाँ, हो जाएगी ।

आशादेवी

देखिए, आप इस लड़के का मन और बिगाड़ रहे हैं ।

मनोहर

(चिढ़कर) चाहे जो करो...मैं तुम्हें माँ नहीं कहूँगा ।

आशादेवी

अच्छा तो मैं जा रही हूँ ।

मनोहर

जाओ न ।

आशादेवी

चलिए साहब !

[आशा और डाक्टर का प्रस्थान । मनोहर सीढ़ी पर जाकर नीचे की ओर झाँक कर देखता है ।]

मनोहर

जाओ...जाओ । तुम्हें माँ नहीं कहूँगा । (लौटकर कमरे में आकर खड़ा होता है और ऊपर छत की ओर देखने लगता है) माँ...माँ... उतर आओ नीचे । यहाँ कोई नहीं है...तुम्हें कोई पकड़ेगा नहीं । कोई नहीं पकड़ेगा...कह तो रहा हूँ । नहीं आएगी, नहीं आएगी !

[बैठकर बांच पर सिर रख देता है । आशा का प्रवेश । आशा सीढ़ी के ऊपर कमरे के बाहर खड़ी हो जाती है । क्षण भर मनोहर की ओर देखती है । फिर जल्दी से आगे बढ़कर मनोहर को गोद में उठा लेती ।]

मनोहर

छोड़ दो...छोड़ दो...छोड़ दो ।

आशादेवी

चलो लाल ! तुम्हें ले चलूँगी । मुझे माँ न कहना । बस अब मानोगे न...

मनोहर

छोड़ दो...(उसकी गोद में छटपटाने लगता है । आशा उसे धीरे से नीचे उतार देती है ।)

आशादेवी

(मनोहर का हाथ पकड़ कर) चलो चलें ।

मनोहर

(आशा की ओर देख कर नहीं) जाऊँगा अब । जानती हो माँ ने मुझसे क्या कहा था ?

आशादेवी

नहीं ।

मनोहर

अच्छा सुनो उस दिन रात को कोई नहीं था (दूसरे कमरे की ओर हाथ उठाकर) माँ उस कमरे में सोई थी। दूसरा कोई नहीं था... मैं चला गया। उसने मुझे अपनी छाती पर बैठ कर कहा 'बाबू मेरे मर जाने पर किसी चीज़ के लिये किसी से हाथ न जोड़ना।' मैं तुम से हाथ नहीं जोड़ूँगा।

आशादेवी

हाथ जोड़ने को कौन कहता है? चलो।

मनोहर

नहीं मानोगी तो मैं रोने लगूँगा। चली जाओ।

[आशा कुछ देर तक उद्विग्न खड़ी रहती है। फिर धीरे धीरे सिर नीचे कर चली जाती है। मनोहर बेचैन होकर इधर उधर देखने लगता है। किवाड़ खोल कर दूसरे कमरे में जाता है और अपनी माँ की तस्वीर लेकर निकलता है। तस्वीर को दोनों हाथों से पकड़कर, उस पर अपना सिर रख देता है।]

मनोहर

माँ! माँ! बोलो। नहीं बोलोगी? नहीं बोलोगी? अच्छा तब मैं उसे माँ कहूँगा और तुम्हें चिढ़ाऊँगा।

[दूसरे कमरे में कोई ध्वनि होती है, मनोहर चौंक कर खड़ा होता है। धीरे-धीरे पैर दबा कर कमरे के दरवाजे पर जाता है और दूसरे कमरे में झाँक कर देखता है। फिर ओठ दबाते हुए लौटता है, उसकी नाक कभी ऊपर उठती है, कभी नीचे झुकती है]

कोई नहीं है, ...कोई नहीं है। [जगाई का प्रवेश।]

जगाई

चलोगे बाबू! शहतूत खाने?

मनोहर

नहीं। (कुछ सोचने लगता है)

जगई

चलो न, खूब पक गई है।

मनोहर

(डाँटकर) चला जा। उस दिन नहीं पकी थी कि बाबूजी ने मुझे मारा और कहने लगे कि रात को शहतूत खाता है...बीमार पड़ जाएगा!

जगई

वह तो शहर गए हैं...रात को आएँगे।

मनोहर

नहीं जाऊँगा...नहीं जाऊँगा...मेरे बहाने शहतूत खाएगा और मारा जाऊँगा मैं।

[जगई का प्रस्थान]

[मनोहर सामने के दरवाजे पर कुर्सी खींच कर बैठता है। तस्वीर को नाक के सामने ऊपर उठाकर देखने लगता है। बातें करते हुए शर्माजी और वेनीमाधव का प्रवेश। वेनीमाधव शर्माजी की अवस्था का है। रेशमी कुरता, बढ़िया पाढ़ की विलायती धोती। न राष्ट्रवादी और न अंग्रेजी प्रभुत्व का दास। लंबा तगड़ा, घनी लंबी मूँछें, शायद उसके लिये अपना मतलब चलता रहे...यही संसार का सबसे बड़ा सिद्धांत है।]

शर्माजी

(मनोहर के पास आकर) क्या कर रहे हो? चित्र तोड़ डालोगे? मैं तो हैरान हो गया हूँ तुम्हारी शैतानी से। बार-बार मना किया कि कोई चीज़ न छुआ करो, तुम नहीं मानते। मुझे अवसर नहीं है कि बराबर तुम्हारे पीछे पड़ा रहूँ। देखा करूँ तुम क्या कर रहे हो, कैसे रहते हो। मास्टर साहब आए थे?

मनोहर

(कातर दृष्टि से शर्मा की ओर देखता हुआ) अभी नहीं।

शर्माजी

अभी नहीं ? पहली तारीख को पंद्रह रुपये के लिये सिर पर चढ़ बैठेंगे। क्या कहूँ, जिसके साथ जितनी ही उदारता दिखलाई जाय वह और भी ख्याल नहीं करता। अच्छा जाओ नीचे! (उसके हाथ से तस्वीर ले लेते हैं) जगई! जगई!

जगई

(नीचे से) आ रहा हूँ साहब...

शर्माजी

अभी लालटेन नहीं जली ?

[लालटेन लेकर जगई का प्रवेश। दूसरे कमरे में लालटेन रख देता है। इस कमरे में भी रोशनी हो जाती है। जगई और मनोहर का प्रस्थान]

वेनीमाधव

किसका चित्र है ?

शर्माजी

मेरी पहली स्त्री का...

वेनीमाधव

तो क्या कोई दूसरी स्त्री भी है ?

शर्माजी

(असमंजस में) जी नहीं...अभी तो नहीं।

वेनीमाधव

तब पहली क्यों ?

शर्माजी

मैं भूल गया कि यहाँ के नामी वकील के सामने खड़ा हूँ। नहीं तो ऐसी भूल नहीं करता (दूसरे कमरे में प्रवेश कर) आओ यहीं बैठें।

वेनीमाधव

(कमरे के दरवाजे पर जाकर) वाह साहब! यह तुम्हारा कमरा

है या अजायबघर । (कमरे में चारों ओर देखकर) जिधर देखिए... किताबें, अखबार, नोटिसें, कैसे रहते हो इसमें ?

शर्माजी

आओ भी ।

बेनीमाधव

आखिरकार बैठा कहाँ जाएगा ? कुर्सियों पर भी तो कागजों का ढेर लगा है ।

[शर्माजी कुर्सियों पर से कागज उठाकर इधर उधर जमीन पर फेंकने लगते हैं, जिसकी ध्वनि बाहर सुनाई पड़ती है ।]

बेनीमाधव

हुँ...हुँ...क्या कर रहे हो ? इतनी धूल उड़ रही है । आओ, बाहर वहाँ छत पर बैठें...बड़ी गर्मी है । (रुमाल निकाल कर नाक दबा लेते हैं) चेयरमैन होकर भी शायद अपना आफिस ऐसे ही रक्खोगे ।

शर्माजी

(बाहर निकलते हुए) नहीं, वह घर नहीं रहेगा कि जैसा रहे कोई बात नहीं ।

बेनीमाधव

जी नहीं, घर की आदत बाहर भी नहीं छूटती ।

शर्माजी

अच्छी बात । तब तक मैं चेयरमैन हो ही कहाँ रहा हूँ ।

बेनीमाधव

(छत की ओर बढ़ते हुए) चेयरमैन तो हो जाओगे । इसमें तो कोई संदेह नहीं । तुमने देश के लिये जो त्याग किया है...डिप्टी कलक्टरी के लिये चुने जाने पर, ट्रेनिंग भी खतम हो जाने पर, तुमने स्तीफा दे दिया । जो सुनता है, हैरान हो जाता है ।

शर्माजी

जमाई ! जमाई !

वेनीमाधव

क्या होगा ?

शर्मा जी

कुर्सी बाहर रख दे।

वेनीमाधव

(एक कुर्सी उठा कर बाहर छत पर निकलते हुए) बुलाओ तुम नेता हो। मुझे तो रोज दस बार इधर से उधर कुर्सी करनी पड़ती है।

[शर्मा जी एक कुर्सी लेकर बाहर निकलते हैं। जगाई का प्रवेश]

शर्मा जी

कुछ नहीं जाओ। मनोहर कहाँ है ?

जगाई

नीचे तख्त पर सो रहे हैं।

शर्मा जी

सो रहे हैं ? इस समय ? बड़ा चांडाल लड़का है। अभी यह हालत है, आगे क्या करेगा ? (जगाई का प्रस्थान)

वेनीमाधव

उसकी माँ मर गई है। तुमको उस पर उदार होना चाहिए। (कुर्सी पर बैठते हैं)

शर्मा जी

(कुर्सी पर बैठते हैं) उदार होना चाहिए...एँ। तुमको पता नहीं मेरा जीवन आजकल क्या हो गया है। जिस साल मैं फोर्थइयर में था मैंने अपने हाथ से पाँच हजार रुपया एक साल में खर्च किया था...जब कि दूसरे लड़कों का काम पाँच सौ में ही चल जाता था। और आज मेरी स्त्री मर रही थी, मैं इस लायक नहीं था कि उसकी ठिकाने से दवा कर सकूँ। चचाजी चाहते थे कि मैं रोता हुआ उनके सामने खड़ा होऊँ और तब वह दुनियादारी का लेक्चर देकर अपनी लोहे की संदूक खोलें और मुझे रुपया दें। मुझ से यह नहीं हो सका। इसके लिये मुझे

कितना कष्ट सहना पड़ा...याद कर तबियत दहल उठती है। शरीर का एक-एक बूँद रक्त नाचने लगता है। यह बात सच है कि मुझे दुनियादारी नहीं आती। लेकिन शायद इसके लिये मैं पैदा भी नहीं हुआ था। मुझे इसकी परवाह नहीं है कि दुनिया मुझ पर संदेह करेगी।

बेनीमाधव

लेकिन दुनिया तुम पर संदेह क्यों करेगी?

शर्माजी

(बेनीमाधव की ओर ध्यान से देखकर) बेनी बाबू...(रुक जाते हैं)

बेनीमाधव

हाँ-हाँ कहो...आज मैं इसीलिये आया हूँ कि तुम्हारी सभी बातें सुन लूँ। कल को तुम चेयरमैन हो जाओगे। फिर पता नहीं...

शर्माजी

हूँ...तो तुम मेरी सारी बातें सुन लेना चाहते हो आज...जब कि मैं दुर्भाग्य की भँवर में नीचे-ऊपर हो रहा हूँ...अब गया, तब गया क्यों (थोड़ी देर रुककर) कल जब मैं चेयरमैन होकर सौभाग्य के शिखर पर चढ़ जाऊँगा...तब तुम नहीं सुनोगे। (उद्विग्न होकर) ठीक है...आज ही सुनो...आज तुम्हारी छुरी पूरा काम करेगी...कल को तो शायद हाथ हिले। अच्छा तो सुनो! औरों की बात कौन कहे पहले तो तुम्हीं मुझ पर सन्देह कर रहे हो।

[बेनीमाधव एक बार उनकी ओर देखकर चुप रह जाता है]

शर्माजी

हूँ तो 'मौनं सम्मति लक्षणं' (सिर हिला कर) यहाँ कानूनी कूट-नीति की जरूरत नहीं है। मै तो साफ कहता हूँ और साफ सुनना चाहता हूँ।

बेनीमाधव

तो क्या मेरा संदेह निराधार है?...(मुस्करा कर भौंहें नचा देता है।)

शर्माजी

(कुछ सोचकर) मान लो कि मैं देवीजी को प्रेम करता हूँ तो…? (सिर नीचे कर दाँतों से ओठ दबा लेते हैं)

वेनीमाधव

(रूखे स्वर में) तो कुछ नहीं…जैसी खुशी…लेकिन समाज…

शर्माजी

(रूखे स्वर में) समाज का ठेकेदार कौन है मैं या तुम?

वेनीमाधव

हम दोनों…

शर्माजी

कोई नहीं। हम दोनों सुन्दर भोजन पर, सुन्दर वस्त्र पर, सुन्दर स्त्री पर…धन, कीर्ति, यश, दुनिया की इन सब चीजों पर समाज के मुखिया कहते बहुत हैं…करते कुछ नहीं। या सड़क पर जिसे पाप समझते हैं, कमरे में उसी की उपासना करते हैं। अपने भीतर एक बार देखो तो मालूम होगा। हम जिस सफाई के साथ अपने पुण्य का विज्ञापन देते हैं, अगर उसी सफाई के साथ अपने पाप का विज्ञापन देते, तो मुझे पूरा विश्वास है, हम लोगों की नैतिक दशा आज की स्थिति से कहीं अच्छी होती।

वेनीमाधव

इसका मतलब कि तुम से और कुछ कहना व्यर्थ है।

शर्माजी

व्यर्थ नहीं है। मुझ से जो कुछ, जितना कहना चाहो कहो, लेकिन अपने को भी याद रक्खो, अपनी जिंदगी को…अपनी ओर देख कर मेरी ओर देखो, तब तुम मुझे समझ सकोगे। मेरे पाप को, मेरे पुण्य को…अगर इन चीजों का कुछ मतलब हो सकता है या इन चीजों में कुछ सचाई है।

[एकाएक उठकर टहलने लगते हैं, ऊपर देखते हैं, आसमान में चन्द्रमा

निकल आया है छत के किनारे खड़े होकर बाहर सड़क की ओर देखते हैं और फिर लौटकर कुर्सी पर बैठते हुए बेनीमाधव का हाथ अपने हाथ में लेकर]

तुम जानते हो असहयोग की लहर में.....स्तीफा देने के बाद...मैं दो वर्ष के लिये जेल गया। मै मोतीलाल नेहरू तो था नहीं कि मेरे पास जेल में भी सभी चीजें मौजूद थीं, अखबार भी, किताबें भी, या एक शब्द में आनंद भवन की दीवाल को छोड़कर आनन्द भवन की बाकी सभी चीजें। मैं केवल असहयोगी नहीं था, क्रांतिकारी था। नौकरी से स्तीफा देकर मैंने नौकरशाही की मशीन का छेद दिखलाया था, उसे जबरदस्त धक्का दिया था। इसलिये जेल में मेरी अच्छी खबर ली गई। चोर और हत्यारे की तरह मेरी सासत की गई। तुम मेरे लड़कपन के साथी थे। मुझे याद आता है जब हम दोनों दर्जा तीन में पढ़ते थे, हमने एक ही आम बारी-बारी दाँत से काट कर खाया था...कालेज तक साथ रहे। उन चौबीस महीनों मे तुमसे यह भी नहीं हो सका कि अपने लड़कपन के साथी और अपनी जवानी के मित्र को एक बार देख आते। तुम जाते कैसे? दो दिनों में दो सौ रुपए छोड़ने पड़ते। मामूली आदमी के लिये यह मामूली बात नहीं थी। (थोड़ी देर ठहर कर) मतलब यह है कि तुम नहीं गए। घर वालों को क्या पड़ी थी? माँ बाप थे नहीं। चाचाजी को कलक्टर साहब और डिप्टी कलक्टर की दावत देने से ही फ़ुरसत नहीं थी। दुनिया में जो अपने सगे कहे जाते हैं, उनके इस व्यवहार से मुझे जितना दुःख हुआ, उतना जेलर की बदमाशी से नहीं।

बेनीमाधव

ठहरो...

शर्माजी

क्यों?

बेनीमाधव

इसलिए कि जो बीत गया···मैं मानता हूँ हम लोगों से भूल हुई।

शर्माजी

जो बीत गया···बहुत कुछ जीवन में दे गया ले गया···वह मिटाने की चीज़ नहीं है। जो भूल आप लोगों से तब हुई, वही भूल इधर भी होती रही है और होती रहेगी। इसलिये कि अब मैं आप लोगों के काम का नहीं रहा। आप लोगों को मैं संतुष्ट नहीं कर सकूँगा।

बेनीमाधव

वही भूल इधर भी? इसका मतलब? कहोगे ईमान से इधर तुमने क्या कहा मैंने नहीं किया?

शर्माजी

अजी मैं तुमसे कहता कुछ करने के लिये? कभी नहीं। जब मेरे जीवन के लिये कहने सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता तो शायद मैं अपने यहाँ के मजिस्ट्रेट मिस्टर कार्टन से कहता, जिनकी नज़र में मैं नौकरशाही का सब से बड़ा शत्रु था और जिन्होंने मुझसे बदला लेने के लिये बड़ी कोशिश कर दो वर्ष सख्त कैद की सजा दिलाई थी। शत्रु से हाथ जोड़ते बनता है, लेकिन मित्र से नहीं।

बेनीमाधव

मैं तो तुमसे हज़ार-बार हाथ जोड़ सकता हूँ।

शर्माजी

तुम जोड़ सकते हो, चालाकी के लिये। मुझे यह नहीं आता। सात सौ तीस दिन जेल में बीत गए। जिस दिन दो बजे मुझे बाहर निकलना था, ठीक बारह बजे जेलर ने आकर कहा क्यों साहब अभी तक आपके स्वागत के लिये तो कोई नहीं आया। आपके घर पर कोई नहीं है? मुझे मालूम हुआ जैसे मैं अनंत काल से अकेले था, न मेरे नीचे पृथ्वी थी और न ऊपर आकाश। बेनीबाबू जिन्होंने संसार को

माया कहा था, मिथ्या और भ्रम कहा था, उन्हें असली बात मालूम थी।

वेनीमाधव

तुम जानते हो वेदांत की बातें, मेरी समझ में नहीं आती।

शर्माजी

तुम्हें समय कहाँ है? दिन भर कचहरी में मुंसिफ़ साहब, जज साहब, मुहर्रिर साहब या शायद मुअक्किल साहब भी, रात भर घर में, माँ, बाप, बाल बच्चे, इधर-उधर की गप्प-शप्प एक बार क्षण भर इनसे ऊपर उठ कर देखो, तब मालूम होगा वेदांत क्या है है? दुनिया तुम्हारे लायक है और तुम दुनिया के लायक हो, इसलिये तुम वेदांत नहीं समझते। जिस दिन तुम दुनिया के लायक नहीं रहोगे या जिस दिन दुनिया तुम्हारे लायक नहीं रहेगी, उस दिन तुम वेदांत समझोगे। या उस दिन तुम वेदांत छोड़कर और कुछ नहीं समझोगे।

वेनीमाधव

लेकिन शायद वह दिन आयेगा नहीं। मैं तो समझता हूँ मनुष्य को बराबर दुनिया के लायक होना चाहिए। सभ्य मनुष्य होकर दुनिया के लायक न होना, यह बात तो मेरी समझ में नहीं आती। ख़ैर! वह क्या हुआ?

शर्माजी

इच्छा हो रही है सुनने की न? मनुष्य की जितनी रुचि दूसरों के दुःख की बातें सुनने की होती है, उतनी उसके सुख की नहीं।

वेनीमाधव

अजी तुम क्या हो गए?

शर्माजी

हो क्या गया?

वेनीमाधव

तुम्हारे दुःख की बातें सुनने में मेरा मनोरंजन होगा?

शर्माजी

होगा। तुम्हारा नहीं, यह मनुष्य के स्वभाव का दोष है। अभी हम स्वभाव से ही क्रूर हैं। जब कोई दया की भीख माँगता है, हम उसकी ओर देखकर मुँह बनाते हैं। जब कोई पत्र लिखकर हमारी सहानुभूति अपनी ओर खींचना चाहता है, हम उसका पत्र पढ़कर अपने मित्रों को सुनाते हैं, और कहते हैं कैसा मूर्ख है...इसे दुनियाँ का अनुभव नहीं। जिसे हम दुनियाँ का अनुभव कहते हैं, वह हमारी संकीर्णता और हमारे स्वार्थ की अभिव्यक्ति है। हमारी सभ्यता तो बढ़ रही है...लेकिन हमारी मनुष्यता...(चुप होकर एकटक बेनीमाधव की ओर देखने लगते हैं)।

बेनीमाधव

घट रही...यही न!

शर्माजी

मुझे तो ऐसा ही मालूम हो रहा है। हमें जीवन का रस नहीं मिलता और न तो हम कभी खुली हवा में साँस ले पाते हैं। प्रेम करने में भी पाप है, दान देने में भी पाप है। दुनियाँ के नब्बे प्रतिशत काम नहीं करते वह करना...लोग संदेह करते हैं कि यह प्रेम क्यों करता है, दया क्यों करता है, होगी कोई न कोई छिपी बात।

[मनोहर का प्रवेश]

क्यों जी क्या चाहते हो! मास्टर साहब आए!

मनोहर

हाँ आए हैं।

शर्माजी

कब आए!

मनोहर

देर हुई।

शर्माजी

तुम्हें पढ़ा चुके?

मनोहर

हाँ।

शर्माजी

घर जा रहे हैं?

मनोहर

अभी तो बैठे हैं।

शर्माजी

तुम किसलिये यहाँ आए?

मनोहर

(खड़ा होकर कुछ सोचने लगता है) कहते हैं पूछ आओ, कोई काम तो नहीं है?

शर्माजी

अभी कह दो बैठे। तुम सिनेमा देखने नहीं गए?

मनोहर

नहीं ले गईं?

शर्माजी

क्यों?

मनोहर

डॉक्टर साहब थे।

शर्माजी

उनके साथ गईं?

मनोहर

हाँ...

शर्माजी

अच्छा जाओ। (मनोहर का प्रस्थान)

बेनीमाधव

कौन ? डाक्टर त्रिभुवननाथ ?

शर्माजी

हाँ।

बेनीमाधव

अब कहो ?

शर्माजी

क्या ?

बेनीमाधव

(उनकी ओर देख कर) डाक्टर त्रिभुवननाथ के साथ, जिसके बारे में रोज शिकायतें सुनी जाती हैं, उसके साथ। तुम बदनाम हो जाओगे ?

शर्माजी

बदनाम तो मैं कभी हो चुका।

बेनीमाधव

इसलिये उसकी अब परवाह नहीं है। यही न ?

शर्माजी

वकील साहब! मैं समझ नहीं सकता आप क्या कह रहे हैं ? शिकायतें बराबर सच्ची नहीं होतीं और अगर हों भी, तो मैं क्या कर सकता हूँ। आप जानते हैं मेरा उन पर कोई अधिकार नहीं है, वह किसके साथ रहें और किसके साथ न रहें, किससे मिलें और किससे न मिलें, इस बारे में मैं क्या कर सकता हूँ ? जिस तरह मैं स्वतंत्र हूँ, आप स्वतंत्र हैं, वह भी स्वतंत्र हैं। जिस तरह मैं जिससे चाहूँ मिल सकता हूँ या आप जिससे चाहें मिल सकते हैं, उसी तरह वे भी जिससे चाहें मिल सकती हैं। मेरा विश्वास तो ऐसा है...मनुष्य का विकास उसके निजी अनुभवों पर ही होता है। यह बात भी मानी हुई है कि सब के विकास का रास्ता एक नहीं है। सब का रास्ता अलग-अलग है, सब किसी को उस पर चलना पड़ता है, ठोकर खाना और गिरना यह

भी स्वाभाविक है। यही होता रहा है...हो रहा है और होगा। कोई इसे रोक नहीं सकता...इसलिये मैं इसकी चिंता नहीं करता।

बेनीमाधव

जो हो, तुम उनसे छुट्टी क्यों नहीं ले लेते? क्या जरूरत है कि वे तुम्हारे साथ रहें। उनको तुम्हारे साथ रहने का कोई अधिकार भी नहीं है जिसे दुनियाँ या समाज स्वीकार करे।

शर्माजी

(कुछ सोच कर) दुनियाँ या समाज एँ! (चुप हो जाते हैं) मैं हर एक बात को व्यक्ति की आँख से देखता हूँ। दुनियाँ या समाज की आँख से नहीं। व्यक्ति और समाज का द्वंद जहाँ कहीं हुआ है, जब कभी हुआ है, यह सच है कि व्यक्ति को बराबर दुःख उठाना पड़ा है किंतु यह भी सच है कि नैतिक विजय बराबर व्यक्ति की हुई है। तुम्हारी दुनियाँ या तुम्हारे समाज ने ईसा, कन्फ्यूसियस, सुकरात या मंसूर के साथ क्या किया था? तुम्हें खूब मालूम है। समाज के अगुआ उस समय भी यही सोचते थे कि वे उचित कर रहे हैं। मनुष्य जाति की दुःखमय कहानी जिसे हम लोग इतिहास कहते हैं इन्हीं बातों से भरी पड़ी है। तुम्हारा समाज नहीं जानता कि उन्हें मेरे साथ रहने का अधिकार है या नहीं। लेकिन मेरा हृदय जानता है। मेरी आत्मा जानती है कि उन्हें मेरे साथ रहने का अबाध अधिकार है।

बेनीमाधव

क्यों?

शर्माजी

सभी बातें कही नहीं जा सकतीं। मेरी स्थिति में अगर तुम होते तो तुम्हें पता चलता। मेरी स्त्री मर रही थी, मैंने चारों ओर देखा कोई मेरा सहायक नहीं मिला। इस देवी ने उस विपत्ति में मुझे सहारा दिया। मनुष्य जितना से जितना अधिक त्याग कर सकता है, उसने किया। सम्भव है लोगों को उसके चरित्र पर संदेह हो, पर मेरी दृष्टि शायद

उधर न उठे। उसने मेरा उपकार किया यह सत्य है। इसलिये मैं उसका सदैव आभारी रहूँगा। इस अपने देश में कोई भी स्त्री यदि अंधविश्वासों और बेहूदी रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ेगी, तो लोग उस पर संदेह करेंगे। हम लोगों का नैतिक जीवन बहुत नीचे पहुँच गया है। हम जिधर नजर डालते हैं, बुराई छोड़कर और कुछ देख नहीं पाते।

वेनीमाधव

जो हो। मैं यह नहीं चाहता कि लोग आपको झूठ-मूठ बदनाम करें। मुझे मालूम है। जब तक देवीजी आपके साथ रहेंगी, आपके चाचा आपसे बोलेंगे भी नहीं। इसमें हानि आपकी है। आप जो समझें। देवीजी आपको मिलीं कैसे?

शर्माजी

यह जान कर आप क्या करेंगे? जहाँ तक चचाजी की बात, मुझे उसकी इच्छा भी नहीं कि वह मुझसे बोलें। जिस दिन चाहूँगा उन्हें मजबूर होकर मेरा हिस्सा अलग करना पड़ेगा। लेकिन मैं यह चाहूँगा ही नहीं। अपने लिये परिवार को छिन्न-भिन्न करना, मुझे पसंद नहीं है।

[मनोहर को गोद में लेकर शर्माजी के चचा काशीनाथ का प्रवेश। उनके पीछे तीन और आदमी हैं। जगाई लालटेन लेकर सब के आगे है, जो मेज़ पर लालटेन रखकर दूसरे कमरे से कुर्सियाँ निकाल कर रखता है। शर्माजी और वकील साहब कमरे में आते हैं। शर्माजी आगे बढ़कर काशीनाथ का पैर छूना चाहते हैं। काशीनाथ रेशमी पारसी कोट जो देहाती सिलाई होने के कारण भद्दा बना है, फेल्ट टोपी, मखमली किनारे की विलायती धोती और काले रंग का फुलसिलीपर पहने हैं।]

काशीनाथ

नहीं-नहीं मेरा पैर न छूना। अब तुमसे मेरा क्या नाता है?

[शर्माजी चुपचाप सिर नीचे कर खड़े हो जाते हैं]

काशीनाथ

वकील साहब! सुना है यह अपने हिस्से के लिये दावा करनेवाले हैं। इसकी क्या जरूरत है, अपना अलग कर लें।

[उनके साथ के आदमी एक साथ कह उठते हैं]

ठीक कह लीं बाबू, इहे ठीक होई।

शर्माजी

जी नहीं, यह गलत बात है...मैं अपना हिस्सा नहीं चाहता।

काशीनाथ

सब लोग कह रहे हैं गलत कैसे है? वकील साहब उस दिन आप भी तो कह रहे थे!

[वकील साहब असमंजस में पड़ जाते हैं जो उनके चेहरे से साफ़ मालूम होता है।]

बेनीमाधव

(कुर्सी बढ़ाते हुए) बैठिए, सब ठीक हो जाएगा।

काशीनाथ

जी नहीं, मैं यहाँ बैठूँगा? इस घर में? मुंशीजी बही इधर दीजिए तो......

(मुंशीजी बही मेज पर रखते हैं) खोल दीजिए वह पन्ना वकील साहब देख लें (मुंशीजी वह पन्ना खोलते हैं) देखिए तो वकील साहब! इनके पढ़ने में कुल कितना खर्च हुआ है? मैंने साल-साल का हिसाब लिख दिया है।

बेनीमाधव

(बही पर नजर दौड़ा कर) २०५६३॥≡) कुल मीजान है।

काशीनाथ

देखिए! मीजान ठीक दिया गया है न?

बेनीमाधव

(थोड़ी देर चुप रह कर) जी हाँ, ठीक है। आपका मीजान गलत होगा!

काशीनाथ

गलत हो वकील साहब तो गुजर कैसे हो ? कोई रियासत तो है नहीं। रात-दिन मेहनत कर कमाता रहा और इनके पढ़ने का खर्च देता रहा। एक जोड़े जूते में जहाँ मेरा साल कटता था, वहाँ इनको आठ जोड़े लगते थे। मैं समझता था कोई अच्छी नौकरी पा जाएंगे, इज्जत से रहेंगे, मेरी भी इज्जत बढ़ेगी। बारबार कहा 'सुराज' की फेर में न पड़ो। गांधी बनिया है, उसकी बात में न आओ। अंग्रेज न रहेंगे तो हमारे असामी हमें लूट लेंगे। कौन सुने। कितनी मेहनत से डिप्टी-कलक्टरी दिलायी। खट से इस्तीफा दे दिया और इज्जतदार के लड़के होकर चक्की पीसने जेलखाने गए। दो वर्ष के बाद निकले भी तो (मनोहर की पीठ पर हाथ रख कर) इसकी माँ के रहते ही एक फाहशा औरत रख लिया। आज ही कलक्टर साहब कहते थे उस औरत को हटाकर उन्हें घर ले जाइए। आप लोग तो कहते ही थे अब अफसर भी कहने लगे। कहिए न मैं कैसे लोगों को मुँह दिखाऊँ ?

मुंशीजी

सच बात है वकील साहब, ऐसी हालत में कैसे भला...

काशीनाथ

वकील साहब ! पूछिए कैसे हिस्सा लगेगा। इस २०५६३॥≥) का हिसाब कैसे होगा ?

शर्माजी

(काशीनाथ की ओर देखकर) मेरे पास रुपया तो है नहीं कि इस समय मैं आपको दे सकूँ। शायद कभी होगा भी नहीं।

काशीनाथ

होगा क्यों नहीं। एक ही साथ के पढ़े वकील साहब सौ रुपया रोज कमाते हैं।

शर्माजी

मेरे पास रुपया कमाने का ढङ्ग नहीं है। इसलिये नहीं होगा।

हाँ, उसी बीस हजार में......

काशीनाथ

सिर्फ बीस हजार नहीं ५८३॥≡) और

शर्माजी

अच्छा उसी २०५८३॥≡) में मै अपना सारा हिस्सा छोड़ दूँगा। कल आप मुझसे रजिस्ट्री करा लें।

बेनीमाधव

इनके हिस्से की आमदनी कितनी होगी ?

काशीनाथ

करीब सात हजार सालाना।

बेनीमाधव

तब तो हिस्से की मालियत उससे बहुत ज्यादा है।

काशीनाथ

हाँ, है तो !

शर्माजी

है तो क्या ! मुझे स्वीकार है। मै अपने सारे हिस्से की रजिस्ट्री कल कर दूँगा। आज आप रह जाइए।

बेनीमाधव

लेकिन कल तो आपका चुनाव है ?

शर्माजी

उससे बड़ा काम इस समय मुझे यही मालूम हो रहा...

[काशीनाथ मुंशीजी को अलग हटाकर सीढ़ी के पास खड़े होकर धीरे-धीरे कुछ बातें हैं...फिर लौटकर]

काशीनाथ

वकील साहब ! उस औरत को हटाकर पूछिए घर नहीं चलेंगे ? अब तो जो होने को था हो चुका। घर पर खाने कमाने को बहुत है। इन सब बातों की नौबत क्यों आए ?

वेनीमाधव

कहिए साहब। (शर्माजी की ओर देखता है)

शर्माजी

जी नहीं, मुझे घर नहीं जाना है।

काशीनाथ

अच्छी बात। तो मैं आज रह जाऊँगा। कल जो होने को हो... हो जाय। आगे के लिये फिर झंझट न रहे।

आशादेवी

(नीचे से) जगई! जगई! लालटेन लाना।

[जगई दूसरे कमरे से लालटेन लेकर नीचे जाता है। शर्माजी चौंक उठते हैं, घबड़ा जाते हैं, उनका शरीर थरथरा उठता है। वे अपने को सँभाल नहीं सकते और तेजी से स्वयं भी नीचे जाते हैं]

काशीनाथ

यही वह औरत है क्या?

वेनीमाधव

जी हाँ!

काशीनाथ

कहाँ गई थी?

वेनीमाधव

डाक्टर साहब के साथ सिनेमा देखने।

काशीनाथ

कौन डाक्टर?

वेनीमाधव

वही जिनकी दूकान कचहरी के पीछे है।

काशीनाथ

राम...राम...उसके साथ। क्यों साहब! मोतीजान के साथ उसी का न नाजायज ताल्लुक था?

बेनीमाधव

जी हाँ।

काशीनाथ

उसके साथ ? कैसी औरत है ! देखते हैं कितना बेशर्म है। दौड़ा हुआ चला गया। वकील साहब ! कल रजिस्ट्री करा लीजिए। नहीं तो यह सब इसी औरत के पीछे फूँक देगा।

मुंशीजी

बाबू, इनको क्या हो गया। पढ़ते थे तब कैसे थे। देखकर मन नाच जाता था।

काशीनाथ

अभी यहाँ आप रहेंगे वकील साहब ?

बेनीमाधव

जी नहीं...मैं अब चलूँगा।

काशीनाथ

चलिए चलें। मेरी तो अब यहाँ पल भर रहने की तबियत नहीं चाहती। पचपन वर्ष की उम्र हुई। अब तक इज्जत से निबहता आया। उँगली उठाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। आखिरी बार यही दाग लगा।

मुंशीजी

दाग क्या है बाबू ! जो जैसा करेगा, पाएगा ! आपका क्या बिगड़ेगा ? देखते नहीं हैं, कहाँ वह गुलाब ऐसा चेहरा और कहाँ आज-कल मालूम हो रहा है जैसे तपेदिक हो गया है।

काशीनाथ

बिना बुलाए क्यों बोलते हैं मुंशीजी (डाटकर) जब बोलने का ढंग नहीं आता, तो चुप रहा कीजिए। नालायक भी है, तो अपना है। तपेदिक उसके दुश्मन को हो। रजिस्ट्री मैं इसलिये कराऊँगा कि जायदाद बची रहे। आज नहीं कल होश होगा, धर न जाएगा तो क्या करेगा ?

बेनीमाधव

आप बहुत ठीक कह रहे हैं। घर न जाएँगे क्या करेंगे।

काशीनाथ

(मनोहर से) क्यों नाती चलोगे घर तुम ? (उसके सिर पर हाथ फेरते हैं)।

मनोहर

बाबूजी मारेंगे। वह...नहीं जाएँगे तो मैं कैसे जाऊँगा !

काशीनाथ

वह नहीं जाएँगे, तुम चलो। घर पर गाय है, भैंस है, हाथी है। दूध पीना, हाथी पर चढ़ कर घूमना।

मनोहर

(जैसे कुछ याद कर) नहीं...नहीं...माँ ने कहा था बाबूजी को रंज मत करना।

काशीनाथ

(उसे छाती से लगाकर) तुम्हें अपनी माँ की बात याद है ?

मनोहर

(साँस खींचकर) हाँ...है...याद।

काशीनाथ

वकील साहब ! अपना अपना ही है। घर में इस समय कोई लड़का नहीं है। सूना मालूम होता है और यह यहाँ पड़ा है। मनोहर चलो घर तुम।

मनोहर

नहीं...नहीं...छोड़िए। (मनोहर नीचे उतर कर कमरे के कोने में खड़ा होता है)।

काशीनाथ

अभी तक नहीं लौटा। इतनी बेशर्मी . वकील साहब चलिए।

[काशीनाथ वकील साहब और उनके साथ वालों का प्रस्थान।

मनोहर बेचैन होकर इधर-उधर कमरे में भटकने लगता है। नीचे कुछ अस्पष्ट ध्वनि सुनाई पड़ती है]

काशीनाथ

नहीं...नहीं...मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा। वकील साहब ! मना कीजिए। कल रजिस्ट्री हो जानी चाहिए। पूछिए मैं रह जाऊँ न।

शर्मा जी

रह जाइए...कल हो जावेगा।

मनोहर

(मनोहर दरवाजे के बाहर सीढ़ी तक जाता है फिर लौट कर) आ रहे हैं, आ रहे हैं।

[दौड़ कर चुपचाप कुर्सी पर बैठ जाता है। शर्माजी और आशा का प्रवेश। शर्माजी अपने कमरे में जाकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं। आशा इधर उधर कमरे में टहल कर बाहर खुली छत पर चली जाती है। मनोहर कभी छत की ओर देखता है तो कभी शर्माजी के कमरे की ओर। थोड़ी देर तक बिल्कुल सन्नाटा रहता है। आशा ऊपर हाथ उठा कर अंगड़ाई लेती है। धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाने लगती है। शर्माजी के कमरे में किसी चीज़ के गिरने और झनक कर फूटने की कड़ी ध्वनि होती है। आशा जल्दी से भीतर जाकर लालटेन उठा कर उस कमरे में जाती है]

आशादेवी

(कोमल स्वर में) चित्र कैसे फूट गया ? तबियत ढीली है क्या ? तब बोलते क्यों नहीं ? अँधेरे में आकर यहाँ बैठ गए। चलें बाहर...

[आशा और शर्माजी बाहर दूसरे कमरे में आते हैं। मनोहर के पास की कुर्सी पर शर्माजी बैठते है। आशा वहीं खड़ी रहती है।]

शर्माजी

मनोहर ! सुनो।

[मनोहर उनके पास जाता है और वे उसे उठा कर अपनी जाँघ पर बैठा कर उसे छाती से लगा लेते हैं। मनोहर सिसक-सिसक कर रोना

चालू करता है और ज्यों-ज्यों शर्माजी चुप कराते हैं त्यों-त्यों उसकी रुलाई बढ़ती जाती है।]

चुप रहो...न रोओ (उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) भूल गए तुम्हारी माँ कह गई थी न कि बाबूजी का कहा मानना। (मनोहर रोना बन्द करता है) क्यों रोते हो...बताओ?

मनोहर

रोने का जी चाहता है।

[जगई का प्रवेश]

जगई

भोजन तैयार है।

शर्माजी

मनोहर को ले चलो खिलाओ तब तक।

[जगई मनोहर को लेकर चला जाता है। दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं। थोड़ी देर सन्नाटा रहता है]

उमाशंकर

(आशा की उँगली पकड़कर) चिंता कैसी?...

[आशा का शरीर काँप उठता है। वह सिर झुका कर रोशनी की ओर देखने लगती है। रोशनी में उसका सारा मुँह देख पड़ता है। उमाशंकर उसके मुँह की ओर देखने लगते हैं। आशा की आँखों से निकल कर कई बूँद आँसू मेज पर टपक पड़ते हैं।]

उमाशंकर

ऐं! रो रही हो? (उसका पूरा हाथ पकड़कर खींचते हुए) इधर देखो।

[आशा अपना मुँह पीछे को फेर लेती है। उमाशंकर एकाएक खड़े होकर एक हाथ से उसका मुँह रोशनी की ओर फेरते हैं और दूसरे में रुमाल लेकर उसकी आँखें पोंछते हैं। क्षण भर के लिए रूमाल से उसकी आँखें बन्द कर उसके मुँह की ओर देखते हैं। आशा अपना सिर उनके कंधे पर रख देती है। क्षण भर सन्नाटा।]

आशादेवी

(एकाएक अलग होकर भर्राई हुई ध्वनि में) आपके चचाजी यहाँ जो कहते रहे हैं...आपके बारे में या मेरे बारे में...मैं सब वहाँ सीढ़ी पर खड़ी होकर सुनती रही हूँ...नीचे भी जो बातें हुई हैं...मैंने सुना है। मेरे लिये आप घर से अलग न हों। मैं यहाँ आई थी आपकी सेवा करने और सहायता करने। वह समय निकल गया। अब मेरा काम नहीं है। मेरे लिये, सदैव के लिये घर की सम्पत्ति छोड़ देना...

उमाशंकर

(रूखे स्वर में) घर की सम्पत्ति मैं अपने लिये छोड़ रहा हूँ। अपनी मुक्ति के लिये। साम्यवाद की लहर आ रही है...देश की सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पति होगी...राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की...धनी गरीब...यह बात मिटने वाली है अब तो वह युग आ रहा है जिसमें मनुष्य के समान अधिकार और समान कर्तव्य होंगे...स्वामी और सेवक, पूँजीपति और मजदूर...इन बातों में पड़ कर दुनियाँ बहुत बिगड़ चुकी है। उसकी रीढ़ की हड्डी टूट चुकी है वह सीधी खड़ी नहीं हो सकती। समाज परिवर्तन नहीं क्रान्ति चाहता है। पुरानी इमारत की मरम्मत बहुत हुई...इतनी हुई कि अब उसमें दूसरी मरम्मत की जगह नहीं है। उसकी नींव हिल रही है...एक धक्का और साफ। जो समाज की सच्ची भलाई चाहने वाले हैं उनका काम है कि इस हिलती नींव पर एक भी नई ईंट न रक्खें उस पर और बोझ न लादें। या तो उसे छोड़ कर खुले आसमान के नीचे आ जायँ...मनुष्य जाति की वह आदिम अवस्था जिसमें न धर्म, न अधर्म, न पाप, न पुण्य, न शिक्षा, न मूर्खता प्रकृति के जड़ नियमों में जड़ मनुष्य का जीवन, न घर, न परिवार, न समाज, न देश। कहीं कुछ नहीं। सब एक रस और नहीं तो फिर (आवेश में) इस इमारत को गिराकर उसकी नींव खोदकर फेंक दें और उसकी जगह दूसरी इमारत की नींव डालें। पुरानी इमारत की एक ईंट भी इस नई इमारत में न लगे...नहीं तो वह बैठेगी नहीं।

[कुछ सोचने लगते हैं। आशा ध्यान से उनकी ओर देखने लगती है]

उमाशंकर

(आशा की ओर देखते हुए) इतनी हैरान क्यों देख पड़ती हो... मैं...शायद...हाँ घरवालों से नाता तोड़ कर या पुश्तैनी जायदाद को लात मार कर, मैंने उस युग का आज सच्चे दिल से स्वागत किया है। जिसमें मनुष्य केवल मनुष्य होगा। इस पुरानी इमारत की नींव से मैंने एक ईंट निकाल ली है। मैं गिराना चाहता हूँ। बनाने वाले दूसरे होंगे।

आशादेवी

मनुष्य केवल मनुष्य होगा !

उमाशंकर

हाँ...

आशादेवी

लेकिन मैं समझ नहीं सकी !

उमाशंकर

जो बात अब तक हुई नहीं, समझाई नहीं जा सकती। लेकिन यों समझो कि...हमारे और तुम्हारे या किसी के जीवन में हमारी आंतरिक प्रवृत्तियाँ हमारी आत्मा पर छोड़ दी जायँ। हम अपने जिम्मेदार रहें, अपने मालिक और अपने नौकर रहें।

आशादेवी

हूँ...तो मैं कब जाऊँ !

उमाशंकर

कहाँ जाना है ! तुम्हें अब कहीं जाना नहीं होगा।

आशादेवी

नहीं, मैं यहाँ नहीं रहना चाहती। मेरी आंतरिक प्रवृत्तियाँ मेरी आत्मा पर छोड़ दी जायँ।

उमाशंकर

समझ कर कह रही हो !

आशादेवी

हाँ...

उमाशंकर

इसका मतलब कि मैं और भी स्वतंत्र हो रहा हूँ। पर...गर्ल्स स्कूल में अब जगह न मिले।

आशादेवी

मैं अब अध्यापिका नहीं रहूँगी। जब एक बार छोड़ दिया तो...

उमाशंकर

तब फिर...

आशादेवी

जो हो (कमरे के बाहर खुली हुई छत पर जाकर बाहर देखती है।)

उमाशंकर

हूँ...

आशादेवी

यहाँ आइए...यह देखिए...जल्दी...जल्दी।

उमाशंकर

(वहाँ जाकर) क्या है?

आशादेवी

(एक ओर हाथ उठा कर) वह देखिए...कोई...जैसे मनोहर की माँ...वह सफेद साड़ी पहने।

उमाशंकर

कहाँ...कोई तो नहीं...

आशादेवी

देखिए, देखिए, आपको देख नहीं पड़ता?

[हाथों में अपना मुँह छिपा लेती है]

परदा गिरता है।

दूसरा अंक

[दोपहर। भीषण गर्मी। बाहर धू धू कर लू चल रही है। वही कमरा। वही मेज़ और कुर्सियाँ। उसी तरह अव्यवस्थित। पिछले दरवाज़े से आकर दाईं ओर की दीवाल के पास एक चारपाई बिछी है। आशा उस पर बैठकर जाने की तैयारी में सामान सूट केस में रख रही है। डाक्टर त्रिभुवननाथ का प्रवेश]

डाक्टर

यह सब क्या हो रहा है?

आशादेवी

(सिर उठा कर उनकी ओर देखने लगती है फिर नीचे देखती हुई) बैठिए।

डाक्टर

(कुर्सी खींचकर उसके पास बैठते हुए) कहिए।

आशादेवी

(उनकी ओर देखती हुई रूखे स्वर में) क्या पूछ रहे हैं?

डाक्टर

यह सब तैयारी...

आशादेवी

जी हाँ...मैं जा रही हूँ।

डाक्टर

कहाँ...?

आशादेवी

वहाँ...जहाँ...मनुष्य न हों।

डाक्टर

हूँ...लेकिन...क्यों?

आशादेवी

पता नहीं...यहाँ रहने की तबियत नहीं चाहती। मेरा पत्र...

डाक्टर

(मुस्करा कर) पत्र क्या ?

आशादेवी

वही जो रात आपने लौटा देने को कहा था।

डाक्टर

आप मेरा विश्वास नहीं करतीं...अब क्या ?

आशादेवी

हाय ! मेरा सब कुछ बिगाड़ कर, मेरे पास जो अमूल्य रत्न था उसे छीन कर, उस पर भी...उस पर भी। डाक्टर साहब ! (बेचैन हो उठती है, स्वर भारी हो उठता है) अच्छा न दीजिए। याद रखिए। उस पाप का भार मुझ पर है, पर इसका आप पर।

डाक्टर

किसके सामने ?

आशादेवी

ईश्वर के ?

डाक्टर

देवीजी !...मैं नास्तिक हूँ।

आशादेवी

अच्छा मेरे...मेरे सामने उसका भार आप पर है। आपने मुझे लोभ में फँसा कर...

डाक्टर

लोभ में फँसा कर ? आपकी इच्छा नहीं थी ? तब तो मेरे साथ बड़ा धोखा हुआ।

आशादेवी

[क्रोध से उसकी ओर देखने लगती है]

डाक्टर

रंज होने की बात नहीं है...समझने की बात है। पुरुष कोई भी हो पुरुष है। स्त्री कोई भी हो स्त्री है।

आशादेवी

इसका मतलब?

डाक्टर

यही कि जो शर्माजी, वही मैं...भेद बस नाम का है।

आशादेवी

देवता और राक्षस? भेद बस नाम का है? बस अब आप यहाँ से चले जाइए।

डाक्टर

देवीजी! कल आप मुझे धमकाने के योग्य थीं...पर आज नहीं हैं। आपके लिये मैं पहला पुरुष हूँ। आपको मेरा सम्मान करना चाहिए।

आशादेवी

[अपने घुटनों के भीतर सिर दबा कर मुँह छिपा लेती है]

डाक्टर

[मुस्करा कर...कई बार सिर हिलाता है।]

आशादेवी

(डाक्टर की ओर देखती हुई) तो आप पत्र नहीं देंगे?

डाक्टर

जी नहीं। मैं उसे आपकी याद में रखना चाहता हूँ। हाँ मैं किसी को दूँगा नहीं...इसका मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।

आशादेवी

लेकिन इसका विश्वास मैं कैसे करूँ?

डाक्टर

आपका मन। जितना पापी मुझे आप समझी हैं ...उतना पापी

मैं नहीं हूँ। आपके साथ विश्वासघात अब मैं नहीं करूँगा। वह तो अपने ही साथ विश्वासघात करना होगा।

आशादेवी

अपने ही साथ क्यों?

डाक्टर

मैं अब आपको अपनी समझता हूँ। मेरा जीवन बहुत बिगड़ चुका था...पर अब नहीं बिगड़ेगा। मैं डूब रहा था...आपने मुझे बचा लिया। अब मैं किसी न किसी तरह किनारे जा लागूँगा।

आशादेवी

पर मैं तो डूब गई।

डाक्टर

इसे आप समझें। यह आपका पत्र है। (पत्र उसके सामने फेंक देता है) अब तो आप निश्चिंत हुईं।

आशादेवी

(पत्र देखकर) जी हाँ...आपको धन्यवाद है।

डाक्टर

(उठते हुए) नमस्कार...क्षमा कीजिएगा।

[डाक्टर का प्रस्थान]

[आशा वहीं चारपाई पर लेटकर अपने मुँह पर तकिया उठाकर रख देती है। उमाशंकर का प्रवेश।]

उमाशंकर

कैसी तबियत है?

आशादेवी

(उठ कर बैठती हुई) अच्छी है।

उमाशंकर

(सूटकेस की ओर हाथ उठा कर) तैयारी हो रही है क्या?

आशादेवी

जी हाँ...तीन बजे की गाड़ी से।

उमाशंकर

इस लू में ! रात तबियत उस तरह बिगड़ गई थी।

आशादेवी

अब तो यहाँ...क्षण भर भी जी नहीं चाहता...

उमाशंकर

मैं यह तो कहता नहीं कि आप रह जायँ। लेकिन एक बात है। (चुप होकर) मेरे पास इस समय रुपए नहीं हैं, आपको देने के लिये...

आशादेवी

मुझे देने के लिये रुपए ! हे ईश्वर...

उमाशंकर

मैं चाहता हूँ...सबसे छुट्टी ले लेना...कोई अपना नहीं... किसी तरह का बन्धन...अकेले मैं...और यह संसार चाहे जैसा रहे। इसके साथ समझौता मैं नहीं कर सकूँगा। मैंने देख लिया...अच्छी तरह से, यह सम्भव नहीं ! मैंने रजिस्ट्री कर दिया...सारी जायदाद ...पढ़ाई के खर्चे मे...जिसके लिये पिताजी को वर्षों बाहर रहना पड़ा था। जिस धन के पैदा करने में उनकी जिंदगी गई थी......मैंने योंही हँसी से छोड़ दिया। करता ही क्या ! (चुप हो जाते हैं)

आशादेवी

(नीचे धरती की ओर देखती हुई) इस पर भी मेरे रुपए की चिंता !

उमाशंकर

हाँ, मैं और किसी का भी ऋणी रहना चाहता हूँ...पर आपका नहीं।

आशादेवी

मैंने क्या किया ?

उमाशंकर

वह मैं कह न सकूँगा। क्या नहीं किया ? मेरे लिये अपनी नौकरी छोड़कर...नहीं...नहीं.. यह कहने की बात नहीं है। मेरे हृदय में कितने घाव हुए थे...वे सब भर गए...इसी से... बस इसी से। आप जा नहीं सकतीं...जब तक मैं आपका रुपया दे न दूँ।

आशादेवी

मैं तो आज जाऊँगी ?

उमाशंकर

तो आज ही रुपया भी दूँगा।

आशादेवी

मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। मनोहर कहाँ है ?

उमाशंकर

हो सकता है...मुझे अपने साथ तो न्याय करना है।...मनोहर को घर ले गए हैं।

आशादेवी

आपके चचाजी ?

उमाशंकर

हाँ...

आशादेवी

जाते समय उसे देख भी न सकी। (हथेली पर सिर रख देती है)

उमाशंकर

अच्छा है...घर रहे। मेरे साथ रहने में उसे कष्ट...

आशादेवी

पर जब आपने सारी जायदाद की रजिस्ट्री उनके नाम करा दी

यों क्या वह, वहाँ उनकी दया पर रहेगा।

उमाशंकर

(कुछ सोचते हुए) जैसे रहे! उसके भाग्य में जो होगा... मनुष्य जो लेकर पैदा होता है...वही...कोई बदल नहीं...(आशा उठकर दूसरे कमरे में जाती है) आदमी का जीवन और यह विराट् जगत... समुद्र के बुलबुले उठे और बैठे...

[देवकीनंदन और मुरारीसिंह का प्रवेश। मुरारीसिंह एक टाउन स्कूल के हेडमास्टर हैं। अलपाके का घुटने तक लंबा कोट, जो कम से कम दस वर्ष पुराना है। मखमली किनारी की विलायती धोती जो कम से कम एक महीने की धुलाई है]

आइए (कुर्सियों की ओर संकेत कर) मास्टर साहब! क्या हालचाल है? मनोहर तो घर गया। अब आपको नहीं आना होगा।

देवकीनंदन

कब तक?

उमाशंकर

ठीक नहीं कह सकता। आपका परिचय!

देवकीनंदन

आप रामगढ़ टाउन स्कूल के हेडमास्टर बाबू मुरारीसिंह हैं।

उमाशंकर

(नमस्कार कर) किसलिये...

मुरारीसिंह

योंही...सरकार के दर्शन के लिये।

उमाशंकर

और कोई काम?

मुरारीसिंह

जी नहीं...सब आपकी कृपा!

देवकीनन्दन

आपके चुनाव में आप बड़ी मिहनत कर रहे हैं। इधर पाँच दिनों से स्कूल बन्द कर और मास्टरों के साथ देहात में घूम-घूम कर आपने लोगों को समझाया है कि शर्माजी के चुने जाने से यह लाभ होगा कच्ची सड़क पक्की हो जायगी। नाले पर पुल बन जाएगा। नए मदरसे खुलेंगे। मास्टरों की तनखाह बढ़ेगी।

उमाशंकर

बस चुप रहिए। क्यों साहब यह सच है?

मुरारीसिंह

हुजूर...हम लोगों ने स्कूल बंद कर देहातों में लोगों को यह सब समझाया है। जहाँ तक बन पड़ा है रात दिन...

उमाशंकर

तब तो आपको बड़ा कष्ट हुआ।

मुरारीसिंह

जी नहीं सरकार। आप चुन लिये जायँ तो हम लोगों का नसीब बन जाय।

उमाशंकर

मेरे चुने जाने से आप लोगों का क्या लाभ होगा?

मुरारीसिंह

हुजूर यह मैं कैसे कहूँ...मुझे यकीन है।

उमाशंकर

आपको यकीन है कि मदरसे मे मैं आप लोगों के लिये सिंहासन बनाऊँगा?

मुरारीसिंह

नहीं सरकार...

उमाशंकर

तब क्या?

मुरारीसिंह

हुजूर तो जिरह कर रहे हैं।

उमाशंकर

मास्टर साहब! थोड़ी देर के लिये आप नीचे जाइए।

[देवकीनंदन का प्रस्थान]

सिंह जी आपको तनखाह मिलती है...लड़कों को पढ़ाने के लिये या चुनाव में कनवेसिंग करने के लिये?

मुरारीसिंह

(भय से) हुजूर! जब से चुनाव हो रहा है। मैं यह बराबर करता हूँ और साहब लोग बराबर खुश होते रहे हैं। हुजूर अपनी तरक्की के लिये कौन आदमी मिहनत नहीं करता?

उमाशङ्कर

तो इस तरह की मिहनत आप बराबर करते रहे हैं?

मुरारीसिंह

हुजूर! यह हम लोगों का काम है। आप लोग बने रहेंगे तो हम लोगों का भी गुजर होगा।

उमाशङ्कर

लेकिन आप मेरे लिये कोशिश क्यों कर रहे हैं...दो आदमी और खड़े हुए हैं। शायद उनमें से कोई चुन लिया जाय तब?

मुरारीसिंह

हुजूर! जैसी मेरी तकदीर हो, इसके लिये कोई क्या करेगा इसके लिये मैंने सत्यनारायण की कथा मानी है कि आप हो जायँ। हुजूर से मुझ गरीब को बड़ा फायदा होगा!

उमाशङ्कर

मुझसे? फायदा होगा?

मुरारीसिंह

उम्मीद तो हुजूर से ऐसी ही है।

उमाशङ्कर

अगर आप मेरे लिये कोशिश सचमुच कर रहे थे...तो इस समय आपको पोलिंग स्टेशन पर रहना चाहिए था...यहाँ आने की क्या जरूरत थी?

मुरारीसिंह

(घबड़ाकर) यह तो...गलती हो गई...हुजूर जरूर!

उमाशंकर

हूँ...आपके मदरसे में कितने मास्टर हैं?

मुरारीसिंह

हुजूर पाँच।

उमाशंकर

सभी मेरे लिये कोशिश कर रहे हैं?

मुरारीसिंह

जी नहीं...एक ऐसे भी महाशय हैं जो कहते हैं कि इन चीजों से हम लोगों को क्या मतलब! चेयरमैन कोई हो...हमारा काम पढ़ाना है...पढ़ाते चलना चाहिए। यहाँ तक इधर हम लोगों ने स्कूल बंद कर दिया, इसलिये कि जो कुछ हो सके आपके लिये कोशिश कर दें...तो आप रंज हो गए और अपने दर्जे के लड़कों को छुट्टी नहीं दी...मालूम हुआ कि तीन ही दिन में पढ़ाकर लड़कों को बी० ए० पास करा देंगे! अब देखें हुजूर क्या करते हैं!

उमाशंकर

उनका नाम क्या है?

मुरारीसिंह

जगदीश तिवारी।

उमाशंकर

हूँ...पुराने मुदर्रिस हैं।

मुरारीसिंह

नहीं साहब...मैंने पढ़ा कर तो अभी उसे मिडिल पास कराया। इधर दो वर्षों में नार्मल हो आया है।

उमाशंकर

तो अभी नए आदमी हैं...तेज होंगे। मालूम होता है कि आपसे उनकी पटती नहीं।

मुरारीसिंह

जो आप लोगों के काम का नहीं होगा...हुजूर उससे मेरी पटेगी कैसे!

उमाशंकर

अच्छा अब आप जाइए...उन्हें भेज दीजिएगा...मास्टर साहब को।

मुरारीसिंह

हुजूर...मुझे भूल न जाएँगे...शायद...

उमाशंकर

जी नहीं...अगर मैं चेयरमैन हो गया तो सबसे पहले आप ही को याद करूँगा।

[मुरारीसिंह का नमस्कार कर प्रस्थान]

उमाशंकर

(दूसरे कमरे के दरवाजे पर जा कर) क्या सोच रही हो?

आशादेवी

यही कि मेरे जीवन का क्या होगा।

उमाशंकर

यह कोई बहुत बड़ी समस्या तो नहीं है। जो हो। काल के अनंत प्रवाह में मनुष्य का जीवन है क्या? तिनके की तरह बहता चला जा रहा है।

आशादेवी

लेकिन इसी में संतोष तो नहीं हो सकता!

उमाशंकर

संतोष करना चाहिए न!

[देवकीनंदन का प्रवेश]

देवकीनंदन

क्या आज्ञा है!

उमाशंकर

(घूमकर) मैं तो अगर चुन लिया जाऊँगा तो मुरारीसिंह को बरखास्त करूँगा!

देवकीनंदन

बेचारे ने बड़ी मिहनत की है...आपके लिये।

उमाशंकर

इसीलिये तो-

[डाक्टर साहब का प्रवेश]

इस धूप में!

डाक्टर

जी हाँ...आपको आगाह करने। आप लोगों का विश्वास जल्दी कर जाते हैं। वकील साहब आपको वोट नहीं देंगे। मेरे सामने उन्होंने सेठ से पाँच सौ रुपया लिया है।

उमाशंकर

बेनीमाधव जी ने! उस निरक्षर को वोट देंगे...जो ठीक अपना नाम भी नहीं लिख सकता उसको?...

डाक्टर

जी हाँ...उसको।

उमाशंकर

मुझे धोखा देंगे! इसका विश्वास तो मुझे नहीं...

डाक्टर

आपको विश्वास हो या न हो। आपको मेरी बात में संदेह हो तो

कोतवाली के पोलिङ्ग स्टेशन पर चले जाइए। वहीं गए हैं...जहाँ तक उनसे हो सकेगा किसी को भी आपके लिये वोट नहीं देने देंगे।

उमाशङ्कर

पर क्यों !

डाक्टर

पहली बात तो यह है कि सेठ से पाँच सौ रुपए मिल गए, और दूसरी बात यह है कि सेठ से और भी बहुत तरह का मतलब सधेगा। आप उनके किस काम आएँगे ?

उमाशङ्कर

अरे ! हमारे देश के पढ़े-लिखे लोग भी वोट बेचते हैं !

डाक्टर

जी हाँ...इन्हीं लोगों के बल पर स्वराज्य का शोर हो रहा है।

उमाशङ्कर

ठीक कहते हैं...स्वराज्य अभी बहुत दूर है। चलिए कोतवाली मैं चलूँगा...देखूँ...मुझे धोखा...अपने मित्र को !

डाक्टर

आप हठात् मित्रता का नाता निबाहना चाहते हैं। दुनिया कितनी ठोस है...आप नहीं जानते।

[उमाशंकर, डाक्टर का हाथ पकड़ कर दूसरे कमरे में सामने के दरवाजे के पास ले जाकर धीरे-धीरे कुछ कहते हैं।]

डाक्टर

चलिए अभी...मेरे पास है...ले आइए।

उमाशङ्कर

(कुछ सोचकर) तो...चलिए ! डाक्टर साहब ! मनुष्य का जीवन क्या से क्या हो गया !

डाक्टर

रोने के लिये जीवन में बहुत कुछ है। इसे जितना ही भूला

रहे...इसीलिये तो मैं हँसता रहता हूँ।

उमाशङ्कर

चलिए अभी आ रहा हूँ।

[डाक्टर का प्रस्थान। उमाशंकर दरवाजा पकड़ कर बाहर आकाश की ओर देखने लगते हैं। आशा का प्रवेश]

आशादेवी

(उनके पास जाकर) डाक्टर से रुपया लेंगे?

उमाशङ्कर

(उसी ओर देखते हुए) हाँ...

आशादेवी

मुझे देने के लिये?

उमाशङ्कर

हाँ।

आशादेवी

हूँ...तो मैं सब ओर से गई!

उमाशङ्कर

क्यों? (उसकी ओर देखने लगते हैं)

आशादेवी

(उनकी ओर देखकर) आप जानते नहीं। इस डाक्टर ने आपकी कितनी हानि की है।

उमाशङ्कर

मेरी हानि...डाक्टर ने?

आशादेवी

हाँ, जिस दिन आप जानेंगे।

उमाशङ्कर

सुनूं भी।

आशादेवी

मैं नहीं कहूँगी...शायद कहने के पहले मेरी जीभ गिर पड़ेगी।

उमाशङ्कर

(ध्यान से उसकी ओर देखने लगते हैं, आशा सिर नीचे कर लेती है) बात क्या है? इस तरह काँप क्यों रही हो? जहाँ तक मैं जानता हूँ, डाक्टर ने कोई बुराई नहीं की मेरी।

आशादेवी

(साँस खींचकर) ईश्वर करे यही सच हो...पर कैसे? जो मैं यह कह पाती।

उमाशङ्कर

किसी ने मुँह तो नहीं बंद किया है।

आशादेवी

मेरे हृदय ने...मेरी आत्मा ने...

उमाशङ्कर

मैं यह पहेली समझ नहीं सकता...[प्रस्थान]

आशादेवी

(अपनी जेब से एक शीशी निकालती है) आठ बूँद और मेरी मुक्ति। आठ बूँद। (शीशी का काक थोड़ा हिलाकर सूँघती है। नाक मुँह सिकोड़ कर कई बार काँप उठती है। दूसरे कमरे से शीशे की छोटी ग्लास में दो घूँट पानी लाती है। कभी ग्लास के पानी की ओर देखती है तो कभी शीशी की ओर। शीशी का काक खोलकर ग्लास में उड़ेलती हुई) आठ बूँद, एक...दो...तीन...चार (उसका हाथ काँपने लगता है और सारी शीशी उलट पड़ती है। वह थोड़ी देर तक ग्लास की ओर देखती रहती है। कभी तो हाथ नजदीक लाकर और कभी दूर फैलाकर। थोड़ी देर तक गहरी चिंता में...फिर एकाएक उत्साह से।) बस यहीं...अब क्या। (ग्लास को ओठ से लगाकर मुंह में एक घूँट पानी लेकिन उसी क्षण जल्दी दरवाजे की ओर बढ़ना और कुल्ला कर देना। ग्लास मेज

पर रख देती है।) जगई! जगई!!

जगई

(नीचे से) आया।

आशादेवी

हाँ वहीं से कहो आया। इधर न आना।

[जगई का प्रवेश]

यह मेरा बिस्तर जल्दी बाँध दो (चारपाई की ओर हाथ उठाती है)

जगई

अभी...बड़ा घाम है।

आशादेवी

(जोर से) बहस क्यों करते हो!

जगई

(बिस्तर बटोरता हुआ) घाम है...इसमें लूह...

आशादेवी

डरो मत तुम्हे स्टेशन नहीं जाना होगा।

जगई

कौन ले जाएगा?

आशादेवी

इक्का, टाँगा जो मिले।

जगई

और लारी...बस्स...जल्दी जाना हो तो...

आशादेवी

लारी में कई आदमी के साथ बैठकर...नहीं...नहीं...इक्का या टाँगा लाना...पूरा किराया कर।

जगई

(बिस्तर बाँध कर) तो जाऊँ न?

आशादेवी

कहाँ ! (जैसे बड़ी देर के बाद होश में आई हो।)

जगई

टाँगा के लिये, इक्का...

आशादेवी

(कुछ सोचकर) हाँ, जाओ...देर न करो। जाओगे तो इनाम दूँगी।

जगई

अभी लाया। [तेजी से निकल जाता है। आशा ग्लास उठाकर एक बार और ओठ से लगाती है पर व्यर्थ पी नहीं पाती। निराश होकर गहरी चिंता में ग्लास मेज पर रखती है। नीचे मनोहर की बोली सुन पड़ती है।]

मनोहर

कहाँ जा रहा है ! बाबूजी हैं...देवीजी......कोई नहीं है। नहीं आएगा ! मैं अकेले रहूँगा ! अच्छा न आ। लौटेगा तब पूछूँगा।

[आशा चौंक कर उठती है। ग्लास उठाकर पी जाती है। दरवाजे के बाहर सड़क की ओर देखती है फिर घूमकर पीछे, सीढ़ी की ओर देखती है।]

मनोहर

(सीढ़ी के नीचे से) कोई नहीं है...मैं अकेले रहूँगा ! अनाथालय में...अनाथालय में...लड़कों के साथ...किसी की माँ नहीं है...वहाँ सब लड़के...मैं भी उसी में। [मनोहर का प्रवेश]

आशादेवी

(दौड़कर मनोहर को गोद में उठाती हुई) तुम आ गए...... आ गए ! मेरे जाने से पहले...(उसका सिर अपनी छाती से लगाकर) मेरे बच्चे ! मुझ से भेंट करने के लिये। तुम्हें मालूम हो गया कि मैं जा रही हूँ। यहाँ (ऊपर हाथ उठाकर) तुम्हारी माँ के यहाँ।

मनोहर

जा रही हो ? माँ के यहाँ।

आशादेवी

हाँ...

मनोहर

कब ?

आशादेवी

आज...अभी !

मनोहर

तुम बीमार तो नहीं हो ?

आशादेवी

(मुस्करा कर) मैं ? तुम क्यों आए...घर न जा रहे थे ? अपने बाबा के साथ।

मनोहर

मैं नहीं जाऊँगा। अपने तो गद्देवाली गाड़ी में बैठे और मुझे दूसरी गंदी गाड़ी में...उसमें चमार चिलम पी रहे थे...उसी में थूकते थे... (पीठ पर हाथ रखकर) यहाँ मेरी पीठ पर पड़ गया......मैं गाड़ी से निकल आया...सीटी बजी "भों" "धुक...धुक" धूँआ निकला...मैं वहीं खड़ा रहा गाड़ी निकल गई। चले गए। अब मुझे नहीं पाएँगे। बाबूजी तो अपने साथ गद्देवाली गाड़ी में बैठाते हैं। मैं नहीं जाऊँगा...नहीं जाऊँगा...भेजेंगे तो गाड़ी से कूद पड़ूँगा...मर जाऊँगा।

आशादेवी

मैं जा रही हूँ...तुम्हारी माँ के पास...दो घंटे में चली जाऊँगी।

मनोहर

मुझे भी ले चलना।

आशादेवी

(उसे छाती से लगा कर) नहीं लाल ! तुम यहाँ दुनिया में फूलो

फलो। लोग तुम्हारी बड़ाई करें। मैं तुम्हारी माँ से कह दूँगी कि तुम बड़े हो रहे हो। पढ़ रहे हो। बड़े अच्छे लड़के हो। जब तुम स्कूल जाओगे तो मैं तुम्हारी माँ के साथ (ऊपर हाथ उठा कर) वहाँ बहुत ऊपर खड़ी होकर तुम्हारी राह देखूँगी।

मनोहर

और जब स्कूल से लौटूँगा...तब भी?

आशादेवी

हाँ तब भी। (उसे नीचे उतार कर) घूम रहा है। मकान घूम रहा है न। मनोहर!...जैसे बिजली घर में चक्का घूमता है (नीचे ऊपर हाथ घुमा कर वृत्त बनाती हुई) इस तरह...इस तरह...इस तरह। (कुर्सी पर बैठ कर मेज पर सिर टेक देती है। मनोहर आश्चर्य से उसकी ओर देखता है।)

मनोहर

बीमार पड़ गई...माँ के पास जाने के लिये। जाड़ा लगता है... कोई चीज ओढ़ा दूँ...(दौड़ कर दूसरे कमरे से कम्बल ला कर उसके ऊपर डाल देता है, फिर उसकी पीठ को जोर से दबा कर) अब नहीं जाड़ा लगेगा (उसका पैर पकड़ कर ऊपर उठाता है) कुर्सी पर रख लो...इसे जाड़ा रहा है. काँप रहा है।

[जगाई का प्रवेश]

जगाई

टाँगा आ गया।

आशादेवी

(कम्बल फेंककर) ऐं आ गया? चलो जल्दी चलो। हाँ...बिस्तर, सूटकेस ले लो, एक लोटा भी। (उठकर खड़ी होती है...उसके मुँह से अधिक पसीना चल रहा है। रह रह कर आँखें खुलती हैं और बंद होती हैं। चलना चाहती है, लेकिन पैर सीधे नहीं पड़ते, लड़खड़ाती हुई वो पग आगे बढ़ती है। जगाई सामान उठाता है)

मनोहर

कहाँ जा रही हो ?

आशादेवी

अपने घर...

मनोहर

कहाँ है घर ?

आशादेवी

संसार के उस पार जहाँ कोई नहीं...कोई नहीं...ओह आग लगी है। पानी। एक लोटा जल्दी पानी ! (जगई चारपाई पर सूटकेस और बिस्तर रख कर नीचे दौड़ कर जाता है। आशा वहीं धरती पर सिर थाम कर बैठ जाती है) मनोहर ! मनोहर !

मनोहर

(उसके पास जाकर) क्या है ? (उसकी पीठ पर हाथ रखता है)

आशादेवी

भाग जाओ...भाग...जाओ...आग...लगी...जल...जाओगे...जल...जा...ओ...।

[पानी लेकर जगई का प्रवेश]

जगई

हाँ...पानी...

आशादेवी

(अपने सिर पर हाथ रख कर) यहाँ गिराओ...जल्दी करो।

[जगई उसके सिर पर पानी गिराने लगता है]

टाँगावाला

(बाहर से) देर हो रही है सरकार ! गाड़ी नहीं मिलेगी।

आशादेवी

गाड़ी नहीं मिलेगी ? चलो...चलो...जल्दी करो... (उठ कर अपना माथा पीछे की ओर फेंक देती है। आगे बढ़कर कमरे के बाहर

सीढ़ी के पास आती है।)

मनोहर

(दौड़कर उसका हाथ पकड़ता है) कहाँ जाओगी? इसी तरह भीगे कपड़े।...(उसका हाथ पकड़ कर खींचता है।)

आशादेवी

(उसके साथ कमरे में आकर) तुम्हारी माँ......तुम्हारी माँ...... वह देखो...नहीं देखते।

[एकाएक चुप हो जाती है मनोहर भय से उसकी ओर देखता है। अगाई बाहर आना चाहता है।]

मनोहर

मैं अकेले रहूँगा...? देखता नहीं यह जा रही है माँ के पास... जा...जा...मैं अकेले रहूँगा...बाबूजी को बुला ला। जल्दी जल्दी।

आशादेवी

(सम्भल कर) नहीं...नहीं...मुझे कुछ नहीं हुआ है...उन्हें न बुलाना...न बुलाना! देवता के सामने...मेरा पाप। देव! देव! मेरे अनंत जीवन के उपास्य देव! उन्हें नहीं...उन्हें नहीं।

मनोहर

(चिल्लाकर) क्या कह रही हो?

आशादेवी

(धीरे से हाथ हिलाकर) कुछ नहीं, डरो मत, तुम्हारी माँ की तरह मैं वहाँ फिर न आऊँगी।

मनोहर

माँ आती है?

आशादेवी

हाँ, रात को, रोज जब आधी रात होती है। तुम सो जाते हो। तुम्हारे बाबूजी भी सो जाते हैं, मुझे नींद नहीं आती.....तब। तब

तुम्हारी माँ आती हैं, मैं रोज उनसे वादा करती हूँ, उनके पास जाने के लिये...पर...

मनोहर

मेरे लिये आती होगी ? तुम्हारे लिये नहीं।

आशादेवी

(एक बार कमरे में चारों ओर देखती है...जैसे कोई भी चीज वह नहीं पहचान पाती। रह रह कर उसके मुँह पर भय और विस्मय की रेखा दीख पड़ती है। मनोहर मारे डर के थर-थर काँप रहा है।) तुम्हारे लिये...नहीं...मेरे लिये। मैंने जो किया...कहते हैं मर जीने पर कोई नहीं आता। मकान उड़ा जा रहा है...ऊपर...ऊपर... आसमान में। (अपनी देह पर जल्दी से इधर-उधर हाथ फेरती हुई) चींटी...चींटी...बहुत काट रही हैं, बहुत।

[डाक्टर का प्रवेश]

डाक्टर

(आशा के मुँह की ओर देखकर चौंक जाते हैं) एँ ! (आगे बढ़कर आशा की ओर देखते हुए) आँखें काली पड़ रही हैं...नसें तन गईं हैं (फुकाएक मेज पर से एक छोटी शीशी उठाकर देखते हुए) यही न... यही न जरूर...मैं डरता था। (जोर से) जहर खा लिया !

आशादेवी

नहीं...अमृत...अमृत...

डाक्टर

(उसकी नाड़ी देखते हुए) कितनी देर हुई ?

आशादेवी

(कोई जवाब नहीं देती धरती पर लड़खड़ा कर बैठ जाती है।)

डाक्टर

(वेग से दूसरे कमरे में जाते हैं) जगई...टाँगा रोको जाने न पाए। नहीं ठहरो। (एक स्लिप लेकर प्रवेश) शर्माजी को यह देना...

जब आएँ...उसी समय । मनोहर तुमने कोतवाली देखा है ?
(जगाई सिर हिला देता है ।)

मनोहर

जहाँ बंदूक लेकर सिपाही खड़े रहते हैं ? जहाँ फुहारा है ?

डाक्टर

हाँ वहीं । चले जाओ । अपने बाबूजी से कहना कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल ले गए हैं ।

मनोहर

डाक्टर साहब देवीजी को...कहाँ ?

डाक्टर

अस्पताल ले गए हैं...अस्पताल । समझे ?

मनोहर

हाँ...यह तो माँ के पास जा रही हैं...वहाँ न ले जाओ ।

डाक्टर

जगाई । इनका एक हाथ पकड़ तो ।

(जगाई एक हाथ पकड़ता है दूसरा हाथ डाक्टर अपने पकड़कर आशा को उठाते हैं और धीरे-धीरे सीढ़ी की ओर ले चलते हैं । आशा जाना नहीं चाहती ।)

डाक्टर

सम्हाल कर जगाई !...सम्हाले रहिए गिरी क्यों जा रही हैं ? जाओ मनोहर ! तुम जल्दी ।

मनोहर

[मनोहर को छोड़कर सब का प्रस्थान मनोहर शीशी उठाता है उसे इधर-उधर उलट-पलट कर देखता है ।] जहर खा लिया ! माँ के पास जाने के लिए । मैं भी खा लूँगा । कहती है मकान आसमान में उड़ रहा है । आग लगी है । ओह ! ओह !

[जगाई का प्रवेश । मनोहर दरवाजे के बाहर सड़क की ओर देखता है ।]

वह ताँगा गया। डाक्टर साहब पकड़े हुए हैं। घोड़ा खूब दौड़ रहा है। सरपट...सरपट...

जगाई

जाते हो बाबूजी के यहाँ...या सरपट...सरपट...करते रहोगे?

मनोहर

(घूमकर) बाबूजी के यहाँ?

जगाई

डाक्टर साहब नहीं कह गए?

मनोहर

(सोचकर) क्या कह गए? क्या कह गए? बता दो। बता दो।

जगाई

बता क्या दूँ? न जाओ। चपत खाओगे तो याद पड़ेगा।

मनोहर

बताओ जगाई...हूँ।

जगाई

अब कभी नहीं न मारोगे?

मनोहर

नहीं...कभी...नहीं...बता दो!

जगाई

बाबूजी से कोतवाली में जाकर कह दो कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल ले गए...आप भी जाइए जल्दी।

मनोहर

तुम जाकर कह दो...मैं भूल जाऊँगा!

जगाई

यहाँ रहोगे अकेले?

मनोहर

हाँ रहूँगा...जाओ!

जगाई

तुम डरोगे। यहाँ भूत आता है।

मनोहर

तुमको नहीं पकड़ेगा?

जगाई

मैं उससे लड़ाई करूँगा...और तुम, तुमको उठा कर चला जाएगा।

मनोहर

अच्छा...क्या कहूँगा?

जगाई

बाबूजी से कहना कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल ले गए। उन्होंने जहर खा लिया है।

मनोहर

जहर क्या होता है जी?

जगाई

जिसे मरना होता है...खाकर मर जाता है।

मनोहर

देवीजी मर जाएँगी? अच्छा होगा माँ के पास चली जाएँगी!

जगाई

बाबूजी सुनेंगे तो मारेंगे।

मनोहर

क्यों?

जगाई

देवीजी का मरना वह नहीं चाहते। सुनेंगे तो मारेंगे।

मनोहर

हूँ...तब नहीं कहूँगा।

जगाई

जाओ बाबू...जल्दी करो। अस्पताल भेजो उन्हें।

[मनोहर का प्रस्थान]

जहर खा गईं। बाबूजी से झगड़ा हो गया इसीलिये घर जा रही थीं। मर जाती तो अच्छा होता! डाटने लगती हैं। मलकिन कितना मानती थीं। कभी कड़ा नहीं बोलती थीं। कहती थीं आदमी का दिल दुखेगा। इनको तो दिन भर बाल झाड़ना और बाँधना रहता है। उस पर रोब गाँठती हैं। लोग बाबूजी की शिकायत करते हैं। उनके साथ रहने से...

उमाशंकर

(नीचे से गंभीर स्वर में) क्या हुआ?

मनोहर

डाक्टर साहब अस्पताल ले गए।

उमाशंकर

किसको?

मनोहर

देवीजी...जहर।

उमाशंकर

जहर...!

[उमाशंकर और मनोहर का प्रवेश]

उमाशंकर

क्या हुआ रे!

जगाई

(जल्दी से) अस्पताल जाइए अस्पताल। देवीजी जहर.. (उनकी ओर देखने लगता है)

उमाशंकर

जहर खा गईं।

जगई

जी हाँ...डाक्टर साहब अस्पताल ले गए। यह चिट्ठी है।
(लिफ़ाफ़ा देता है)

उमाशंकर

[लिफ़ाफ़ा लेते हैं...उनका हाथ काँपने लगता है। वेग से दूसरे कमरे में जाते हैं...फिर लौट कर दौड़ते हुए सीढ़ियों से उतर जाते हैं...जगई और मनोहर एक दूसरे की ओर देखने लग जाते हैं।]

मनोहर

(कुछ सोचकर) माँ को तो अस्पताल नहीं ले गए।

जगई

उन्होंने ज़हर नहीं खाया था न ! वह बीमार थीं।

मनोहर

बीमार थीं। मैं बीमार नहीं पड़ूँगा जगई !

जगई

तुम ? राम न करे बीमार पड़ो बाबू !

मनोहर

मैं बीमार पड़ूँगा। क्यों नहीं...क्यों नहीं बीमार पड़ूँगा जगई ?

जगई

चुप रहो ! कोई आता है ! नीचे आहट होती है।

[जगई का प्रस्थान]

[मनोहर इधर-उधर कमरे में घूमता है, मुँह बना कर सीटी बजाता है बेनीमाधव और काशीनाथ का बातें करते हुए प्रवेश]

बेनीमाधव

बड़ा बुरा हुआ।

काशीनाथ

बुरा क्या हुआ वकील साहब...वह मर जाएगी तो वह आदमी हो जाएगा। देखा आपने मैं रोकता ही रह गया...लेकिन रजिस्ट्री

कराने पर तुल गया। मैंने भी सोचा कि जब इसकी यही नीयत है, तो मैं क्यों रोकूँ। कहिए न आप ही कोई भी दूसरा आदमी मेरे इतना तमाशा कर सकता है?

बेनीमाधव

बड़ी बदनामी होगी...(दोनों कुर्सी पर बैठते हैं। मनोहर दूसरे कमरे में जाकर छिप रहता है।)

काशीनाथ

अब तक बदनामी नहीं हुई?

बेनीमाधव

कलक्टर रंज है, मौका पाने पर छोड़ेगा नहीं...और अब इससे बढ़ कर दूसरा मौका क्या होगा?

काशीनाथ

अगर वह उसे बेकसूर कह कर सभी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ले?

बेनीमाधव

दुनिया अपने को बचाती है...दूसरे का ख्याल नहीं करती। देखिए वह कह देगी कि उन्होंने जहर दिया!

काशीनाथ

इसमें शक नहीं कि वह बदचलन औरत है। लेकिन वह अपना ख्याल नहीं करेगी...उमी को बचाएगी। देखा नहीं आपने उस दिन जब मैं उमाशंकर से बातें कर रहा था...उसकी आँखों से चिनगारी निकल रही थी। मुझे तो मालूम हो रहा है वह उसे सचमुच मुहब्बत करती है।

बेनीमाधव

लेकिन यह तो और भी बुरा है।

काशीनाथ

मैं भी इसे भला नहीं कहता...लेकिन बात कुछ ऐसी ही है। इस

थक तो अगर वह मर जाय तो मैं सत्यनारायण की कथा कहलाऊँगा।

वेनीमाधव

(मुस्करा कर) सचमुच ?

काशीनाथ

जी हाँ ! उसने मेरा घर बिगाड़ दिया।

वेनीमाधव

उसने आपका घर नहीं बिगाड़ा।

काशीनाथ

(आश्चर्य से) क्या कहते हैं ?

वेनीमाधव

यही कि उसने आपका घर नहीं बिगाड़ा।

काशीनाथ

तब किसने बिगाड़ा ?

वेनीमाधव

बिगड़ने को था...बिगड़ गया।

काशीनाथ

देखिए साहब ! मैं नसीब नहीं मानता। जो जैसा काम करता है, फल पाता है...कलक्टर साहब यही कहते हैं।

वेनीमाधव

(हँस कर) जी हाँ, आप तो वही न करते हैं...जो कलक्टर साहब कहते हैं।

काशीनाथ

क्या बुरा करता हूँ...इसीलिये तो वे मुझे इतना मानते हैं। है कोई दूसरा जमींदार इस जिले में जिसकी वह इतनी इज्जत करते हों ! उनकी बात तो दूसरी ही है...मेम साहब भी बराबर हाथ मिलाती हैं और अपने बराबर बैठने के लिए कुर्सी देती हैं। आपसे सच कहता हूँ, अगर मेरा लिहाज नहीं करते तो कलक्टर साहब उमाशंकर को फिर

जेल भेज देते।' एक दिन मेम साहब यही कह रही थीं।

बेनीमाधव

कभी मेम साहब ने आपको चाय पिलाया है या नहीं? सच कहिएगा।

काशीनाथ

(उनकी ओर देख कर मुस्कराते हैं।) आप भी दिल्लगी करते हैं।

बेनीमाधव

जी नहीं, बिल्कुल नहीं। मेम साहब जिसकी इज्जत करती हैं, उसे चाय जरूर पिलाती हैं।

काशीनाथ

(सहम कर) वक्र, आपसे क्या झूठ बोलूँ..मुझे कई बार उन्होंने चाय...(चुप हो जाते हैं)

बेनीमाधव

हाँ..हाँ...कहिए...इसमें हर्ज क्या है? चाय में क्या दोष है? रेलगाड़ी में बैठकर पूड़ी खाने से बुरा तो है नहीं। उसमें कौन नहीं बैठा रहता...मुसलमान या भंगी।

काशीनाथ

(कुछ सोचते हुए वकील साहब का हाथ पकड़ लेते हैं) आर्य-समाजी सच कहते हैं। छुआछूत में कोई दोष नहीं है...सफाई होनी चाहिए। पारसाल मैंने मेम साहब को डाली दी थी...बड़े दिन में एक हजार रुपया खर्च हुआ था...आठ सौ रुपए की तो एक अँगूठी थी। रुपया है किस लिए। इज्जत के लिये तो मैं अपनी देह बेंच दूँगा।

बेनीमाधव

जी हाँ, सच है। (कुछ सोचकर) देखिए तकदीर। आज मैं सेठ जी के लिये कोशिश करता ही रह गया, लेकिन मेरे मुअक्किल भी बहक कर इन्हें वोट दे आए। कहते ये सब गांधी बाबा के चेला हैं।

काशीनाथ

आपने नहीं कहा कि एक बदचलन औरत अपने साथ लिये है ? कहना चाहिए था।

वेनीमाधव

मैंने कहा...लेकिन सुनता कौन ? गांधी का जादू ऐसा चल रहा है कि जिसने गांधी टोपी लगाई...बस वह गांधी बना।

काशीनाथ

कलक्टर साहब भी कह रहे थे कि गांधी बड़ा अच्छा आदमी है।

वेनीमाधव

लेकिन उमाशंकर तो उन्हें देवता समझते हैं...कहते हैं कि वह भगवान के अवतार हैं।

काशीनाथ

भगवान का अवतार, बनिया !

वेनीमाधव

जी हाँ कहते हैं।

काशीनाथ

जाने दीजिए, कुवंस है। मैं तो उसकी ओर देखना नहीं चाहता। वह तो वह...देखिए उसके मनोहरा को गाड़ी से निकल कर भाग आया !

मनोहर

(दूसरे कमरे से निकल कर) भाग आया...तो क्या ? अपने तो गद्देवाली गाड़ी मे बैठे और मुझे...

काशीनाथ

गद्देवाली गाड़ी में बैठोगे ? खाने को नहीं मिलेगा।

मनोहर

नहीं मिलेगा तो अनाथालय में चला जाऊँगा।

काशीनाथ

अनाथालय मे ? उठाकर फेंक दूँगा नीचे मर जाओगे।

मनोहर

फेंक दो...मर जाऊँगा तो माँ के यहाँ चला जाऊँगा।

काशीनाथ

इधर चलो। (डाँटकर) चलो इधर।

मनोहर

नहीं...नहीं आऊँगा।

काशीनाथ

नहीं आओगे?

मनोहर

कहता तो हूँ...नहीं।

वेनीमाधव

(मुस्कराकर) नेता का लड़का है। दिल्लगी नहीं है। डरेगा नहीं।

काशीनाथ

(क्रोध से मनोहर की ओर देखते हुए) घर नहीं चलेगा?

मनोहर

नहीं।

काशीनाथ

कहाँ रहेगा?

मनोहर

यहीं बाबूजी के साथ।

काशीनाथ

लेकिन वह तो जेल जाएँगे? चक्की पीसने तब...

[मनोहर स्तब्ध होकर उनकी ओर देखने लगता है]

बेनीमाधव

बोलो तब क्या होगा?

मनोहर

कुछ नहीं।

काशीनाथ

तब किसके साथ रहोगे ?

मनोहर

अकेले...

काशीनाथ

तब मेरे यहाँ चलना पड़ेगा। नहीं तो पेट पचक जाएगा।

मनोहर

तुम्हारे यहाँ तो नहीं जाऊँगा...चाहे मर जाऊँ ! तुम से हाथ नहीं जोड़ूँगा...माँ ने कहा था किसी से हाथ न जोड़ना !

काशीनाथ

तुम्हारी माँ ने कहा था ?

मनोहर

हाँ...

काशीनाथ

कब ?

मनोहर

रात को...जिसके दूसरे दिन (छत की ओर हाथ उठा कर) वहाँ मर गई और लोग उठा ले गए।

[दरवाज़े पर सिर रख कर दोनों हाथों में मुँह छिपा लेता है।]

काशीनाथ

वकील साहब ! वह मेरे घर की लक्ष्मी थी। चार वर्ष वहाँ रही... लेकिन कभी उसकी बोली नहीं सुन पड़ी। ऐसा नहीं हुआ कि किसी नौकर को कभी उसकी परछाईं भी देख पड़ी हो। अगर वहाँ रहती तो मरती भी नहीं।

वेनीमाधव

लेकिन आपने आने क्यों दिया ?

काशीनाथ

न पूछिये। क्या कहूँ। मैं आने नहीं देता था...उसने मेरे पास चिट्ठी लिखी कि मुझे जाने दीजिए। अपने आराम के लिये मैं उनसे अलग नहीं रहूँगी। उनकी सेवा करने से मेरा परलोक बनेगा। इस तरह की बहुत-सी बातें थीं, लक्ष्मी थी लक्ष्मी।

[डाक्टर त्रिभुननाथ का प्रवेश]

वेनीमाधव

क्या हाल है डाक्टर साहब ?

डाक्टर

एँ ! किसकी ?

वेनीमाधव

तो छिपा रहे हैं। हम लोगों को मालूम है कि उन्होंने जहर खा लिया...

डाक्टर

हाँ तब ?

वेनीमाधव

पूछ रहा हूँ कि क्या हाल है !

डाक्टर

(रूखे स्वर में) जहर निकल गया है...बच जाएँगी।

वेनीमाधव

और अगर मुकदमा चले तब ? जरूर चलेगा...

डाक्टर

मेरा काम था उनका प्राण बचाना। मुकदमा चलाना आपका काम है।

वेनीमाधव

हूँ...चलेगा मुकदमा जरूर डाक्टर साहब।

डाक्टर

कल चलेगा न ? आज तो नहीं न चलता। आज हम लोगों को दूसरी चिंता है...मुकदमे की नहीं। चलेगा मुकदमा तो देखा जाएगा...

वेनीमाधव

लेकिन उन्होंने ज़हर क्यों खा लिया ?

डाक्टर

इसका जवाब मैं क्या दूँ ?...उनकी तबियत।

वेनीमाधव

उन्हें जहर मिला कहाँ ?

डाक्टर

यह सब जान कर आप क्या करेंगे ?

वेनीमाधव

लेकिन मेरे जान लेने से आपका बिगड़ेगा क्या ?

डाक्टर

मेरा क्यों बने बिगड़े साहब ? जहर खाया उन्होंने। जानना चाहते हैं...आप...मुझ से क्या मतलब ?

वेनीमाधव

सिवा आपके उन्हे जहर मिला कहाँ होगा ?

डाक्टर

जी हाँ...मैंने ही दिया था। और कुछ ?

वेनीमाधव

इसका मतलब कि फिर आप भी जाएँगे ?

डाक्टर

हो सकता है। आप दूसरे की बात के लिए इतने परेशान क्यों हो रहे हैं ?

बेनीमाधव

इस बात से मेरे मित्र से कुछ संबंध है...इसलिये...

डाक्टर

आज कोतवाली में मित्र के लिए वोट क्यों नहीं दिया ? वकील साहब ! मित्रता दिल से होती है...जबान से नहीं। जो बन पड़े कर दे...बहुत कहने से क्या लाभ !

काशीनाथ

जाने दीजिए साहब क्या जरूरत...फजूल की बकवाद। हम लोगों से कोई मतलब नहीं डाक्टर साहब। उनकी इज्जत बनाने के लिए तो आप यहाँ...

डाक्टर

आप पर तो बस इज्जत का भूत...इसीलिए जिस समय वह जेल में पड़े थे ..आप कलक्टर की दावत कर रहे थे...जिसने उनको सजा दी थी।

काशीनाथ

(क्रोध से डाक्टर की ओर देखते हुए) आप होश में हैं या नहीं !

डाक्टर

आप जो समझें। लेकिन सच तो यह है कि आज जिस घड़ी आपने उनकी जायदाद की रजिस्ट्री अपने नाम से...उसी वक्त से मैं होश में नहीं हूँ। आप उनके सगे चचा हैं और आपका काम यह !

पर्दा गिरता है।

तीसरा अंक

[रात । सब ओर सन्नाटा । वही कमरा । मेज़ और कुर्सियाँ निकाल दी गई हैं बाहर छत पर । कमरे में बीचों-बीच, मसहरी के भीतर चारपाई पर आशा सो रही है । उसके पैताने थोड़ी दूर हटकर स्टूल पर मोमबत्ती जल रही है । बाहर छत पर, कुर्सी पर उमाशंकर बैठे हैं, उनके पास इधर-उधर कुर्सियों पर कागज पड़े हैं । उनके सामने कुछ दूर पर लालटेन जल रही है जिसकी तीखी रोशनी उनके मुँह पर पड़ रही है । लेकिन लालटेन नहीं देख पड़ती । बाएँ हाथ की केहुनी कुर्सी की बाँह पर टेक कर हथेली पर सिर और दाँया हाथ सीधा कुर्सी की दूसरी बाँह पर पड़ा है । बाएँ हाथ की उँगलियाँ बालों के भीतर घुस गई हैं ।]

[तेज़ी से जगाई का प्रवेश]

उमाशंकर

(उसकी ओर देखकर) धीरे से...जाग जाएँगी ।

जगाई

(उनके नज़दीक आकर) वकील साहब...

उमाशंकर

आए हैं !

जगाई

जी...हाँ...

उमाशंकर

(कुछ सोचकर) इस समय ...! क्या बात !

जगाई

कहते हैं थोड़ी देर के लिए ।

उमाशंकर

अच्छा भेजो...कह देना पैर दबाकर आएँगे ?

[जगई का प्रस्थान]

उमाशंकर

[कुर्सी पर का कागज उठाकर धीरे से धरती पर रखते हैं और उठकर कुर्सी ठीक करते हैं।]

[वेनीमाधव का प्रवेश]

वेनीमाधव

(कुर्सी पर बैठते हुए) बधाई।

उमाशंकर

किस बात की सरकार ?

वेनीमाधव

दावत दो दावत...चेयरमैन चुन लिए गए, अब क्या ?

उमाशंकर

आपकी कृपा...

वेनीमाधव

मैंने तुम्हारे लिये इतनी कोशिश की पर तुम्हें सुबहा है कि...

उमाशंकर

(सिर हिला कर) नहीं...नहीं ..कौन कहता है...अगर आप लोग मेरे लिये कोशिश नहीं करेंगे...तो कौन...?

वेनीमाधव

मैंने तो बड़ी कोशिश की यों अगर ..

उमाशंकर

(हाथ उठा कर) धीरे से ..(आशा की ओर इशारा करते हैं।)

वेनीमाधव

मैं कहता था...तुम फजूल के लिये परेशान होगे उनके साथ... यों तो बदनामी थी ही...अब और...

उमाशंकर

उस विषय की बात न करें। बहुत कहा सुना गया उस बारे में... उसे फिर उठाना...नहीं...नहीं बदनामी होती है तो हो।

बेनीमाधव

जिनको तुम्हारी भलाई का ख्याल होगा...जरूर कहेंगे। मैं तो कहता ही रहूँगा, क्योंकि...मुझे...तुम्हारी भलाई...

उमाशंकर

लेकिन अब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। कृपा कर इस विषय में अब आप लोग चुप रहें।

बेनीमाधव

(कुछ सोचकर) तब...नहीं कहूँगा। पर इन्होंने जहर क्यों खा लिया!

उमाशंकर

फिर वही बात। उस विषय में कुछ नहीं...।

बेनीमाधव

लेकिन समाज में इस तरह...

उमाशंकर

मैं कई बार कह चुका हूँ..समाज की चिंता आप न करें। वह ऐसा ही...सदैव से है। वही मनुष्य...वही उसका दिल और दिमाग... बुराई...भलाई सब ऐसी ही। और फिर मैं...अपने साथ प्रयोग कर रहा हूँ...समाज का छोड़ देना मुझे स्वीकार है...लेकिन उसका नहीं। भेड़ की तरह आँख मूँद कर बराबर सीधे चलता जाना... मुझे यह पसंद नहीं है। मैं तो इन दिनों अपने जीवन की प्रयोग-शाला में बैठा हूँ...बाहर क्या हो रहा है...सुनना या देखना नहीं चाहता।

बेनीमाधव

लेकिन लेबोरेटरी से भी बाहर निकला जाता है...

उमाशंकर

ठीक है...लेकिन वह लेबोरेटरी अपने खून मांस की या अपने शरीर की नहीं होती...इस लेबोरेटरी से निकलना...सहज नहीं है।

बेनीमाधव

हूँ...पर जो इसमें हानि हो...

उमाशंकर

हानि तो होगी ही...पर बिना उसके प्रयोग भी तो पूरा नहीं होगा। बोतल की शराब न जला कर मैं अपने हृदय की शराब जला रहा हूँ...वह प्रयोग जिस दिन पूरा होगा...वकील साहब (उत्साह से) उस दिन मैं सच्चा मनुष्य हूँगा।

बेनीमाधव

अच्छी बात है। बनो सच्चा मनुष्य।

उमाशंकर

आप मेरी चिंता न करें। मैं अपना रास्ता जानता हूँ...वकालत खाने के बाहर कोई ठीक रास्ता आप...नहीं जानते। मैं अपना रास्ता स्वयं निकाल रहा हूँ...सम्भव है ठोकर लगे...कहीं ऊबड़-खाबड़ में गिर भी पड़ूँ...पर जो रास्ता मालूम हो जाएगा...तो सारा परिश्रम...

बेनीमाधव

अच्छा जाने दो...(हाथ उठाकर) यह बँगले के सामने की सड़क जल्दी मरम्मत करा देना...।

उमाशंकर

क्यों...

बेनीमाधव

अब भी...चेयरमैन होकर भी नहीं...। हम लोगों को, यहाँ आने में कितनी झंझट होती है।

उमाशंकर

(उनकी ओर देखकर) चेयरमैन इसीलिये हुआ जाता है कि सब से

पहले अपने बँगले के सामने की सड़क मरम्मत करा दे। कैसे आप लोग यह सब सोचते हैं!

वेनीमाधव

हम लोग दुनिया के मामूली आदमी हैं। समझते हैं, पहले पास से काम शुरू करना चाहिए।

उमाशंकर

मैं तो पहले इस बँगले के पीछे जो गली है उसकी मरम्मत कराऊँगा।

वेनीमाधव

यह...जिसके दोनों ओर चमार और बंसफोर बसे हैं।

उमाशंकर

हाँ...बरसात में बेचारों को बड़ी हाय-हाय होती है। घुटने तक कीचड़ हो जाता है। शायद जब से ये सब यहाँ बसे होंगे कभी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने इस पर एक खाँची मिट्टी भी नहीं डाली होगी। बोर्ड के शानदार मेंबरों ने कभी इसका विचार ही नहीं किया।

वेनीमाधव

तब तो उनका दिमाग और आसमान पर चढ़ जाएगा। यों तो बरसात में साईस घुड़सार में सोते भी हैं...तब तो...

उमाशंकर

तब आप सोइएगा। अपना काम...

वेनीमाधव

जी हाँ, हम लोग घास करेंगे...लीद फेंकेंगे...क्यों यही न!

उमाशंकर

तो इसमें हर्ज क्या है! टाँगे पर चलेंगे आप और......

वेनीमाधव

लीद फेंकेगा कौन! कह डालो! तुम लोगों के स्वराज्य में लोगों की इज्जत तो रहेगी नहीं...यह तो मालूम...बात है।

उमाशंकर

आप लोग इज्जत का ठीक मतलब नहीं समझते ।

बेनीमाधव

कुछ सुनूँ भी तुमने क्या समझा है ?

उमाशंकर

मेरी समझ में तो असली मान...मनुष्य को मान करने में है... किसी को उसके मन के विरुद्ध दबा कर उससे वह काम लेना जो अपने नहीं कर सकते...

बेनीमाधव

हुजूर तनखाह दी जाती है, मुफ्त नहीं ।

उमाशंकर

इसीलिये साम्यवाद का तूफान उमड़ा चला आ रहा है । आप लोगों को अभी नहीं समझता, किसी दिन रूस की हालत होगी...तब कहा जाएगा...गरीबों ने जुल्म किया, लूट लिया ..फूँक दिया...मार डाले । वह नौबत क्यों आने पाए, आप लोग...पहले ही से सम्हल जाइए ।

बेनीमाधव

अब बंदूक का लाइसेंस जल्दी मिल जाता है, कोई हर्ज नहीं । मैं तो वही. . . .

ढोल गँवार शुद्र पशुनारी, ये सब ताड़न के अधिकारी...गोसाईं जी ने समझ कर लिखा था । मैं तो यही समझता हूँ ठीक है । इनके साथ मेहरबानी किए नहीं कि ये सिर चढ़े ।

उमाशंकर

बंदूक का लाइसेंस वहाँ भी था (कुछ सोच कर) वकील साहब ! मनुष्य बनना सीखिए ।

बेनीमाधव

क्षमा कीजिए । मैं उपदेश नहीं चाहता । इसीलिये यहाँ के किसी भी प्रतिष्ठित आदमी ने आपको वोट नहीं दिया । सब को मालूम है कि

आप अमीरों के लिये कुछ नहीं करेंगे।

उमाशंकर

अमीरों के लिये बहुत हो चुका है...अब कुछ गरीबों के लिये होना चाहिए। मुझे इसकी इच्छा ही क्यों हुई ? केवल उन्हीं के लिये। केवल गरीबों के लिये। उनकी हालत जब तक सुधारी नहीं जा सकती... तब तक देश...देश के सर्वस्व वही हैं...उन्हीं से देश है।

वेनीमाधव

इसका मतलब यह कि जो कहीं दुर्भाग्य से आप स्वतंत्र भारत के नायक चुने जायँ तो आप अमीरों को निकाल बाहर करेंगे।

उमाशंकर

देखिए...इधर...स्वतंत्र भारत अभी स्वप्न है। मामूली बात में इतने आगे बढ़ जाना ...यहाँ अमीरो के निकाल देने का सवाल नहीं... गरीबों के बसाने का सवाल है। इतने बड़े संसार मे उनके लिये कहीं आशा है या नहीं। देखना यह है।

वेनीमाधव

मेरी समझ में तो नहीं है ..वे इस लायक नहीं ..पशुओं का गरोह।

उमाशंकर

मेरी समझ में तो है। उन्हें पशु बनाया किसने ?

वेनीमाधव

-(रूखे स्वर में) किसने...?

उमाशंकर

हम लोगों ने...हम लोग जो अपने को सभ्य, शिक्षित और प्रतिष्ठित कहते हैं। (कुछ सोचने लगते हैं)

वेनीमाधव

(उनके मुँह की ओर देखकर) मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

उमाशंकर

(चौंक कर) ऐं कैसी आशा थी ?

वेनीमाधव

यही कि आपसे हम लोगों की हानि होगी।

उमाशंकर

ऐसी आशा तो मुझे भी नहीं है कि मुझ से आप लोगों की हानि होगी।

वेनीमाधव

तुम कह क्या रहे हो समझ में नहीं आता।

उमाशंकर

क्या ?

वेनीमाधव

तुम समझो...हम लोगों के विरोध में तुम इन गँवारों को भड़काओगे (थोड़ी देर रुककर) वे हमें धक्का देते चलेंगे। बात-बात में जवाब देंगे तुम...तुम यह करोगे ? तुम्हें वोट देकर या तुम्हारे लिये कोशिश कर मैंने...(चुप हो जाते हैं)

उमाशंकर

भूल की...शायद यही कहना चाहते थे। लेकिन मुझे मालूम है न तो आपने मेरे लिये कोई कोशिश की और न मुझे अपनी ही वोट दी। इसका उलाहना देना मैं नहीं चाहता था पर विवश होकर...इसका दुःख भी नहीं है। मैं जानता हूँ आप लोगों का मतलब मुझसे नहीं निकलेगा। इसलिये जो आप लोग मुझे वोट न दें तो कोई बुराई नहीं। हम लोग अपने सिद्धान्त के लिये लड़ना नहीं जानते। हर एक बात को व्यक्तिगत बना कर बिगाड़ देते हैं। आपके जो सिद्धांत हैं...वही आपके लड़कों के भी हों...आपकी स्त्री के हों... आपके मित्रों और संबंधियों के भी हों। क्यों ? सब कोई विचारों में आपके दास क्यों हों ?

वेनीमाधव

इसलिए कि समाज की इसी में भलाई है।

उमाशंकर

बिल्कुल नहीं...समाज में बुराई इसलिये बढ़ रही है कि दस-पाँच गुमराह जो सोचते हैं कि उन्हीं का कहना और सोचना ठीक हो सकता है...सब जगह अपना ही सिक्का देखना चाहते हैं। औरों को न सोचने देते हैं, न कहने देते हैं। इसका नतीजा! ज्यों-ज्यों लोगों का हक छीना जाता है...थोड़े आदमियों पर उसका बोझ पड़ता जाता है। वे अब अपना अलग समाज बना लेते हैं। दुनिया की सभी अच्छी चीजें, धन, दौलत, पद, मर्यादा, सब प्रकार की सुविधाएँ सुंदर मकान सुंदर सड़कें, एक शब्द में (रुककर) जो कुछ उपयोगी और शानदार सब उनके लिये और बचे हुए ..मनुष्य...जैसा आपने...कहा था... पशु...गंवार...असभ्य नालायक...। (एकाएक खड़े होकर टहलने लगते हैं।)

वेनीमाधव

(उसकी ओर उपेक्षा की नज़र से देखकर) दुनिया स्वर्ग नहीं होगी।

उमाशंकर

(पास आकर) इसलिये नरक हो जाय!

वेनीमाधव

नरक तो है ही।

उमाशंकर

समझने की बात है।

वेनीमाधव

देखता हूँ कैसे स्वर्ग बनाते हो!

उमाशंकर

आप देख नहीं सकेंगे। आपकी आँखों ने अब तक जो देखा है... उससे आगे नहीं बढ़ सकेंगी। आप लोगों ने अपनी रूढ़ियों को फूलों

से सजा दिया है ..इसलिये कि सुन्दर देख पड़ें। उन्हें तोड़कर एक बार बाहर निकल आइए, यहाँ खुले आसमान के नीचे...और तब देखिए अपनी ओर और उन गँवारों या पशुओं की ओर जिन्हें आप कहते हैं...वही मनुष्य, वही हृदय, वही मस्तिष्क, वही जीवन...वही अभाव (उत्तेजित स्वर में) यहाँ आइए...बस देखिए...दुनिया स्वर्ग हो उठती है या नहीं।

बेनीमाधव

(कुछ सोच कर) नहीं...मैं यहाँ नहीं रह सकता...ऐसी बातें ओफ़... सिर में चक्कर आने लगा। (उठते हैं)

उमाशंकर

(उनका हाथ पकड़ कर) चक्कर क्यों आने लगा? अपने मतलब के लिये इतनी बेचैनी...मनुष्य होकर (उनका हाथ हिलाकर) सब के भीतर ईश्वर है किसी का रास्ता न रोको। मनुष्य बनो। तुम्हारा हृदय तो अच्छा है लेकिन संस्कार...

बेनीमाधव

जाने दो इस बात को। (आशा की ओर इशारा करे) जहर मिला कहाँ?

उमाशंकर

फिर वही बात? कितने महत्व की बातें हो रही थीं। बिगाड़ दिया...

बेनीमाधव

इसके बतलाने में क्या हर्ज है?

उमाशंकर

उस विषय में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता। (मनोहर का सीढ़ियों के ऊपर निकलना। हाथ उठा कर) धीरे से।

मनोहर

[पैर दबा कर उनके पास आता है कुछ कहना चाहता है।]

उमाशंकर

(हाथ उठा कर) चुप जाग जाएँगी।

बेनीमाधव

डाक्टर साहब तो कह रहे थे...उन्होंने जहर दिया था!

उमाशंकर

झूठ...हो नहीं सकता।

बेनीमाधव

अपने कह रहे थे। आपके चचा भी थे वहीं...सब के सामने ! अगर मुकदमा चला तो डाक्टर साहब फँसेंगे।

उमाशंकर

मुकदमा आज नहीं न चल रहा है ?

बेनीमाधव

नहीं...लेकिन...

उमाशंकर

लेकिन की बात नहीं है...आज उसकी बात मैं नहीं सुनूँगा। मुकदमा चलेगा...आप से राय माँगूँगा तो कहिएगा। अभी नहीं। आज तो मैं शांति से...

बेनीमाधव

आपको मालूम होना चाहिए...मैं सरकारी वकील हूँ...यह मामला मेरे ही हाथ में...

उमाशंकर

ठीक है, तब जिसे चाहिएगा...फाँसी दे दीजिएगा। इस धमकी का काम अभी नहीं है।

बेनीमाधव

कभी पड़ेगा।

उमाशंकर

जब पड़ेगा देखा जायगा। इस समय आप क्षमा करें।

बेनीमाधव

मैं तुम्हारी भलाई चाहता हूँ।

उमाशंकर

(पैर पटक कर) चुप रहिए...मैं अपनी भलाई नहीं चाहता। एक बात और है, आज से आप दोस्ती की बातें करने न आया करें। मैं बहुत हैरान .

बेनीमाधव

(क्रोध से देखते हुए) मेरा अपमान...इस तरह...मित्र होकर... अच्छा।

उमाशंकर

मित्र होकर नहीं...शत्रु होकर...गोकि मेरी निजी भाषा में यह शब्द नहीं है। धीरे से जाओ।

[बेनीमाधव का पैर पटकते हुए प्रस्थान]

उमाशंकर

(कुर्सी पर बैठकर) क्या है? कहो...

मनोहर

मास्टर साहब आए हैं...

उमाशंकर

आए हैं? नीचे हैं?

मनोहर

हाँ...

उमाशंकर

कोई और है?

मनोहर

मास्टर साहब और एक आदमी और...उस दिन जो आए थे! मास्टर साहब के साथ।

उमाशंकर

मुरारीसिंह हेडमास्टर ! अच्छा चलो आ रहा हूँ !

[मनोहर का प्रस्थान]

(कुछ देर तक सोच कर) मनुष्य की अहम्मन्यता... ..

[खड़े होकर ऊपर देखने जाते हैं । दो चार बार इधर-उधर टहलते हैं । कुर्सी पकड़ कर खड़े होते हैं और बाएँ हाथ की उँगलियों से कई बार अपना सिर ठोकते हैं फिर कमरे में आकर आशा की चारपाई के पास खड़े होकर उसकी ओर देखते हैं । धीरे-धीरे कई बार मसहरी हिलाते हैं । थोड़ी देर रुक कर...उसकी चारपाई के पास झुक कर कुछ आहट लेना चाहते हैं । आशा करवट बदलती है । उमाशंकर सीधे खड़े होते हैं । थोड़ी देर चुपचाप खड़े रहते हैं और फिर धीरे-धीरे नीचे चले जाते हैं । (थोड़ी देर सन्नाटा) आशा कई बार करवट बदलती है चारपाई मरमरा उठती है ।]

आशादेवी

जै शिव...जै शिव (चारपाई पर उठकर बैठती है । मसहरी हटाकर बाहर निकलती है । उसके बाल इधर-उधर मुँह पर, कंधे पर, छाती पर और पीठ पर तितर-बितर, मुँह सूखा हुआ और पीला मालूम हो रहा है । बाहर छत की ओर जाना चाहती है, लेकिन दो पग चलने के बाद वहीं फर्श पर बैठ जाती है ।)

[मनोहर का प्रवेश]

मनोहर

(उसे देखकर) जाग गई, तब तो मारेंगे...(पीछे लौटना चाहता है)

आशादेवी

(हाथ हिला कर उसे बुलाती है । मनोहर चुपचाप खड़ा हो जाता है उसके पास नहीं जाता) आओ...सुनो !

मनोहर

बाबूजी मारेंगे ?

आशादेवी

क्यों ?

मनोहर

कहेंगे जगा दिया।

आशादेवी

नहीं...मैं कह दूँगी...तुमने नहीं।

[मनोहर उसके पास जाकर खड़ा होता है, आशा उसके कंधे पर हाथ रखती है]

मनोहर

कहो।

आशादेवी

कुछ नहीं...यहीं खड़े रहो।

मनोहर

माँ के पास नहीं जाओगी ?

आशादेवी

(उसके कंधे को ठोकते हुए) अभी नहीं...(उसके मुँह को ओर देखने लगती है।)

मनोहर

कहती तो थी जाने के लिये। जाने को कहो तो तुम्हें माँ कहूँगा।

आशादेवी

अब मैं तुम्हारी माँ नहीं हो सकती...मैं अब...उसके योग्य...नहीं।

मनोहर

अस्पताल क्यों गई ! नहीं जाती तो माँ के पास चली जाती न !

आशादेवी

हाँ, तब तो चली जाती...पर...

मनोहर

फिर जहर खा लेना...अस्पताल न जाना ! मुझे भी जहर देना... मैं भी चलूँगा।

आशादेवी

तुम्हें ! हे भगवान (धीरे-धीरे उसकी देह पर हाथ फेरने लगती है। सीढ़ी पर किसी के पैरों की ध्वनि होती है।)

मनोहर

(चौंक कर) आ रहे हैं ...बाबूजी...आ रहे हैं...छोड़ो (छुड़ा कर भाग जाता है।)

डाक्टर

(सीढ़ी पर) मनोहर ! चलो।

मनोहर

नहीं...नहीं...नीचे...

[डाक्टर का प्रवेश। डाक्टर केवल एक चादर डाले है]

डाक्टर

(आशा के पास जाकर) यहाँ बैठी हैं...सुना था...सो रही हैं।

(आशा सिर नीचे कर चुपचाप बैठी रहती है। छत पर से दो कुर्सियाँ लाकर कमरे में रखते हुए) बैठिए। (आशा फिर भी नहीं उठती।) बैठिए, कुछ कहना है।

आशादेवी

(उसी तरह नीचे बैठी हुई) अब कुछ न कहिए।

डाक्टर

बस यही अन्तिम बार।

आशादेवी

अच्छा कहिए।

डाक्टर

(उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुए) बैठिए यहाँ तब...

आशादेवी

(कुर्सी पर बैठ कर) क्या कहेंगे अब ?

डाक्टर

सुनिये...आपने विष खाकर मेरी आत्मा को धोकर पवित्र कर दिया है। बहुत दिनों की बुराई निकल गई। अब मैं मनुष्य हूँ। पर मेरी मनुष्यता में अभी एक कमी है।

आशादेवी

वह क्या ?

डाक्टर

आपकी क्षमा...मुझे क्षमा कर दीजिए। मैंने आपके साथ... (उसका स्वर काँपने लगता है)

आशादेवी

(प्रसन्न होकर) सच्चे मन से कह रहे हैं...डाक्टर साहब ?

डाक्टर

हाँ...जहाँ तक इस जीवन में संभव है। मैंने कितने बुरे काम किए ओह ! (फिर भी उसका स्वर काँपने लगता है।)

आशादेवी

(कुछ सोचकर) पर अभी यह नहीं हो सकता। मैं अभी आपको क्षमा करने की...मुझे अभी अधिकार नहीं कि आपको क्षमा कर सकूँ। मुझे भी मनुष्य बन लेने दीजिए।

डाक्टर

वह कब ?

आशादेवी

अभी...आज ही...इसी रात को। जो वे मुझे क्षमा कर दें तो...(कुछ सोच कर) तो मैं भी मनुष्य बन जाऊँ। डाक्टर साहब ! वे मेरे ईश्वर हैं...देवता हैं...उनको पाने के लिये...लेकिन नहीं मैं उन्हें अपवित्र नहीं करूँगी।

डाक्टर

(एकाएक काँपकर) लेकिन वह कैसे...कैसे हो सकेगा वह...

आशादेवी

मैं उनसे सब कह दूँगी...खोलकर...शब्द...शब्द

डाक्टर

ऐं सब कह देंगी! (वेग से साँस लेने लगते हैं)

आशादेवी

(उनका हाथ अपने हाथ में लेकर) घबड़ाइए मत। वे गंगा की तरह सब कुछ धो देंगे। वही केवल...वही...और कोई यह दाग धो नहीं सकता।

डाक्टर

पर...(कुछ सोच कर) उनका विश्वास...कितना अधिक...नहीं... नहीं, नहीं वह तो मेरा मरना होगा।

आशादेवी

तब...

डाक्टर

मैं भाग जाऊँगा ..जहाँ फिर कभी उनके सामने न आ सकूँ। आज की रात नहीं...आज की रात नहीं...कल मैं कहीं जाऊँगा। (उसकी ओर देखते हुए) मेरी रक्षा कीजिए...कल...कल.. कल कह दीजिएगा। ओह! जब वे मेरी ओर देखेंगे। आज नहीं...कल...उनकी आँखों से आग निकलेगी...मैं जलने लगूँगा...आज नहीं...आज नहीं...(स्वर के साथ ही साथ उसका सारा शरीर काँपने लगता है।)

आशादेवी

हाँ...हाँ...क्या कर रहे हैं? हम दोनों की मुक्ति हो नहीं सकती, जब तक कि हमारा पाप उनके सामने खुल न जाय। डाक्टर साहब! वे देवता हैं...आपने उन्हें पहचाना नहीं।

डाक्टर

हो सकता है...शायद हैं भी। पर मैं उनके सामने खड़ा नहीं हो सकूँगा। मैं साहस नहीं कर सकता।

आशादेवी

तब तो अभी आप मनुष्य नहीं हुए। मनुष्य का हृदय इतना निर्जीव नहीं होता...जो अपना पाप न सँभाल सके।

डाक्टर

[कुर्सी पर झुक कर हाथों में अपना मुँह छिपा लेता है]

आशादेवी

(उसकी ओर देखती हुई) डाक्टर साहब !

[डाक्टर उसी तरह चुपचाप खड़ा रहता है]

आशादेवी

देखिए भी इधर।

[डाक्टर फिर भी कोई उत्तर नहीं देता]

आशादेवी

धन्य ! (उसकी ओर ध्यान से देखने लगती है)

डाक्टर

(आशा की ओर देखते हुए) अभी नहीं, अभी मेरा हृदय इसके लिये तैयार नहीं है।

आशादेवी

(सिर हिलाती हुई) अभी तैयार नहीं है...तब आप इसी तरह नरक में पड़े रहेंगे। उस पाप को धोकर सदैव के लिये सिर ऊँचा क्यों नहीं कर लेते ! घड़ी भर की पीड़ा और फिर मुक्ति...कितनी सुन्दर ...उसके लिये ..उसके लिये...यह अधीरता ?

डाक्टर

(विक्षिप्त होकर कमरे में टहलता है, बाहर छत पर आता है। आशा उठ कर खड़ी होती है धीरे-धीरे चारपाई पर जाकर लेट जाती

है। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहता है।)

[डाक्टर का प्रवेश]

डाक्टर

(आशा की चारपाई के पास पहुँच कर) तो मैं जा रहा हूँ...कल कोई नहीं जानेगा...मैं कहाँ रहूँगा। (जाना चाहता है)

आशादेवी

डाक्टर साहब !...एक बात और...सुनिए...सुनिए...नहीं लौटेंगे !

डाक्टर

(उसके पास आकर) क्या है ? (रूखे स्वर में) मैं अब यहाँ ठहर नहीं सकता।

आशादेवी

मुझे छोड़ कर चले जाएँगे ?

डाक्टर

इसका मतलब ?

आशादेवी

यह आपसे हो सकेगा ?

डाक्टर

मैं नहीं समझता।

आशादेवी

अपने हृदय से पूछिए।

डाक्टर

वह तो बेहोश है।

आशादेवी

वह बोल रहा है...आप सुन नहीं पाते।

डाक्टर

अच्छा यही सही...

आशादेवी

इतनी रुखाई ?

डाक्टर

आप चाहती क्या हैं ?

आशादेवी

मैं ?

डाक्टर

(रूखे स्वर में) जी हाँ आप।

आशादेवी

मैं चाहती हूँ कि हम दोनों पापी प्राणी...एक साथ...

डाक्टर

मैं समझ नहीं रहा हूँ।

आशादेवी

(चारपाई से उतर कर खड़ी होती है) किस तरह समझाऊँ श्रीमान् !

डाक्टर

मुझे क्या मालूम ?

आशादेवी

अच्छा तो सुनो (निस्संकोच) मैं चाहती हूँ कि जिस तरह हमारा पाप एक है...उसी तरह हमारा जीवन भी एक हो जाय। तुमने कभी मुझसे कहा था कि मेरे लिये तुम पहले पुरुष हो। उस समय मैं तुमको घृणा करती थी...आज मैं तुम्हे प्रेम करती हूँ। तुम मेरे लिये पहले पुरुष हो...यह सच है। अब तुम मेरे लिये अंतिम पुरुष भी रहो। मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ...(उनका हाथ पकड़ कर) तुम मेरे प्रियतम...

डाक्टर

हूँ...

आशादेवी

क्या सोच रहे हो (उसके कंधे पर हाथ रखती है) बोलो ?

डाक्टर

सोच रहा हूँ...दुनियाँ वही है या नहीं...जो कल थी। आज से दो महीने पहले थी।

आशादेवी

नहीं...वह नहीं है...आज से दस मिनट पहले जो दुनियाँ थी, वह नहीं है।

डाक्टर

पर हम लोग साथ रहेंगे कैसे? (कुछ सोचने लगता है)

आशादेवी

हम लोग विवाह करेंगे...तुम भी अविवाहित हो और मैं भी...

डाक्टर

लोग क्या कहेंगे?

आशादेवी

हँसी उड़ाएँगे...बदनामी करेंगे।

डाक्टर

तब?

आशादेवी

तब क्या? कुछ नहीं। हमारा अपना जीवन रहेगा। कोई क्या कहता है...इसकी चिंता हम लोग नहीं करेंगे। हम लोग तो सचमुच बुरे हैं...कहने वाले तो उनको भी बुरा कहते हैं...जो बुराई जानते ही नहीं...जैसे शर्माजी को। मेरे लिये वे इतने बदनाम हुए। किसको पता है कि आज तक उन्होंने मेरी परछाईं भी नहीं छुई।

डाक्टर

सचमुच?

आशादेवी

आश्चर्य क्या है?...मैं पहले कह चुकी हूँ, वे देवता हैं। यदि वे मनुष्य होते...तब तो मैं इतने नीचे नहीं गिरती। मैं चाहती ही रह गई

कि वह एक बार मेरी ओर देख कर मुस्करा दें···या एक बार मेरी कोई उँगली भी दबा दें। उन्होंने न मालूम कै बार मेरा हाथ पकड़ा होगा। मैं काँप उठती थी...लेकिन उन पर कोई असर नहीं...जैसे पत्थर के हाथ में मेरा हाथ हो। इसीलिये वे देवता हैं।

डाक्टर

हूँ...ऐसा है ? सचमुच...देवता हैं। (जैसे कुछ सुन कर) आ रहे हैं...मैं जा रहा हूँ।

[डाक्टर का वेग से प्रस्थान]

आशादेवी

(इधर-उधर बेचैन होकर टहलती है। कभी कुर्सी पकड़ कर खड़ी होती है, तो कभी दरवाजा। कभी दीवाल पर सिर टेकती है। कमरे के बीच में कुर्सी के सहारे खड़ी होकर) मुक्ति ? (सिर हिला कर) नहीं मृत्यु ?

[उमाशंकर का प्रवेश]

उमाशंकर

कैसी तबियत है ?

आशादेवी

(मुस्करा कर) सब आपकी कृपा...

उमाशंकर

(संदेह से उसकी ओर देखते हैं) गर्मी अधिक तो नहीं मालूम होती ?

आशादेवी

(मीठे स्वर में) जी नहीं...अब अच्छा है।

[डाक्टर और देवकीनंदन का प्रवेश]

डाक्टर

तो आप सचमुच उस बेचारे को बरखास्त करेंगे ?

उमाशंकर

डाक्टर साहब ! मैं कोई बात झूठ-मूठ नहीं कहता। इसकी आदत

मुझे नहीं है। मुरारीसिंह का काम है लड़कों को पढ़ाना। चुनाव में आंदोलन करना नहीं। मैं जानता हूँ उन्होंने मेरे लिये बड़ी चेष्टा की। पर मैं इसके लिये पुरस्कार नहीं दूँगा।

देवकीनंदन

इस बार क्षमा तो कर सकते हैं।

उमाशंकर

हाँ, जो वह मेरी अपनी बुराई हो। सिद्धांत की बुराई मैं नहीं सह सकता।

डाक्टर

पर...

उमाशंकर

(रोक कर) चुप रहिए। इस बारे में मैं और कुछ कहना सुनना नहीं चाहता। मैंने कह दिया। कल मैं उन्हें बरखास्त करूँगा। आप लोग जाइए। मैं बहुत थक गया हूँ। बोलने की तबियत नहीं चाहती।

[डाक्टर और देवकीनंदन का प्रस्थान]

आशादेवी

डाक्टर साहब थोड़ी देर नीचे ठहरिए! (उमाशंकर की ओर देख कर) मुझे भी कुछ कहना है!

उमाशंकर

अब आज नहीं कल...

आशादेवी

आज ही...

उमाशंकर

आज नहीं...मैं..

आशादेवी

मैं अब रुक नहीं सकती।

उमाशंकर

(संदेह से उसकी ओर देखते हुए) आज तो क्षमा...

आशादेवी

जी नहीं...बिल्कुल नहीं। मैं मरी जा रही हूँ। उस बोझ को मैं आज हलका करूँगी। (गहरी साँस लेती है)

उमाशंकर

अच्छा...कहो।

आशादेवी

इस तरह नहीं। (उमाशंकर का हाथ पकड़कर) यहाँ...इस जगह ...इस कुर्सी पर बैठो। मैं जो कह रही हूँ...वह ऐसी बात नहीं है... जिसे तुम खड़े-खड़े सम्हाल सको। (उन्हें कुर्सी के पास लाकर) बैठो। मेरे देवता...आज मैं तुम्हारी दुनियाँ उलट दूँगी।

उमाशंकर

(कुर्सी पर बैठते हुए) तुम्हें हो क्या गया ? पागल हो रही हो क्या ?

आशादेवी

बिल्कुल नहीं...आज तो अभी होश में आ रही हूँ। तीन महीने के पागलपन के बाद।

उमाशंकर

कहो भी क्या है ?

आशादेवी

(कुर्सी पर बैठते हुए...उनका हाथ अपने हाथ में लेकर) तैयार हो जाओ सुनने के लिये।

उमाशंकर

मालूम होता है...कुछ कहना नहीं है।

आशादेवी

मनोहर की माँ...कैसे...मरी थी...? (रुक कर) जानते हो ?

उमाशंकर

दो वर्ष तपेदिक से बीमार थी...

आशादेवी

पर वह तपेदिक से मरी नहीं।

उमाशंकर

(संदेह से) तब ?

आशादेवी

(उनकी ओर एकटक देखती हुई) मैंने...उसे...विष दिया था।

उमाशंकर

(उठते हुए) ऐं ?

आशादेवी

(उनका हाथ खींचती हुई) बैठ कर...बैठ कर...सब सुन लो तब...

उमाशंकर

(बैठते हुए) विष दिया था ?

आशादेवी

हाँ...उसी में का बचा विष मैंने कल खा लिया था...

उमाशंकर

तो वह तपेदिक से नहीं मरी ? (आशा की ओर ध्यान से देखने लगते हैं)

आशादेवी

अभी नहीं...अभी मुझे दण्ड न दो...सुन लो सब...मेरे पापों का दण्ड हो नहीं सकता।

उमाशंकर

पर विष दिया क्यों ?

आशादेवी

तुम्हारे लिये। मैं तुम्हें प्रेम करती थी।

उमाशंकर

इसीलिये उसे विष दिया ?

आशादेवी

हाँ मैं चाहती थी...मेरे प्रेम में कोई साझीदार न बने। मैंने अपना हृदय निकाल कर तुम्हारे चरणों में रख दिया। पर तुमने उसका मान नहीं किया। जिस समय मैं तुम्हारे प्रेम के लिये...तुम्हारी मुस्कराहट के लिये...तुम्हारे स्पर्श के लिये या स्त्री अपने पुरुष से...जो कुछ...चाहती है...उसके लिये मरी जा रही थी...उस समय तुम मेरा सम्मान करते थे...मेरी...प्रशंसा करते थे। मेरे सामने तुम उस तरह जाते थे...जैसे...लोग...अदालत में जाते हैं।

उमाशंकर

बस अब अधिक नहीं। (सिर हिलाते हैं)

आशादेवी

अभी बहुत। जो चाहो दण्ड दो...पर सब सुन कर। मैं अपने पाप का पूरा दण्ड चाहती हूँ। तुम सो जाते थे...और मैं रात भर इस करवट से उस करवट...सोचती थी अब आते हो...अब आते हो.. बिल्ली की आहट भी तुम्हारे पैरों की आहट मालूम होती थी...मेरा हृदय काँपने लगता था...शरीर काँपने लगता था...एक-एक रोएँ खड़े हो जाते थे...सिर से पसीना चल पड़ता था ! (उसका स्वर काँपने लगता है।)

उमाशंकर

बस...सुनो भी...

आशादेवी

नहीं पहले मुझे कह लेने दो। कोई रात ऐसी नहीं बीती कि मैं तुम्हारी चारपाई के पास घंटों खड़ी न रही हूँ...तुम्हारे पैताने अपना सर रख देती थी...जब कभी तुम्हारा पैर मेरे मुँह पर पड़ जाता था.. समझती थी वरदान मिल गया। पूजा सफल हो गई। कभी-कभी

तुम्हारे पैर की उँगलियों पर आँख रखकर पलकों से उन्हें दबाती थी ! (पलकों को से दबाती है...आँखें बंद हो जाती हैं ।)

उमाशंकर

तो तुमने मेरे लिये उसे विष दे दिया । मेरे बच्चे को अनाथ कर दिया । उसकी तस्वीर लेकर रोता रहता है ।

आशादेवी

हाँ...मैंने समझा उसके मर जाने पर तुम्हें पा सकूँगी । पर... (एकाएक फ़र्श पर बैठ कर उनके पैरों पर अपना सिर रख देती है ।)

उमाशंकर

(उसके सिर पर हाथ रख कर) उठो मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ... आज से मेरे बच्चे की तुम्हीं माँ हो । उठो...(झुक कर उसे उठाते हैं ।)

आशादेवी

(दो पग पीछे हट कर) उस योग्य मैं अब नहीं हूँ...जो मैं उस योग्य होती...उसके बाद मैंने जो पाप किया...हाय !

उमाशंकर

(चौंक कर) उसके बाद जो पाप किया !

आशादेवी

हाँ...डाक्टर से मैंने जहर लिया था...इसलिये कि वे तुम से कह न दें...उसे छिपाने के लिए मैंने उन्हें...अपनी पवित्रता...अपना शरीर...स्त्री का जो सब से बड़ा भरोसा है...वही...अपना चरित्र दे दिया । हत्या से कहीं भयंकर पाप...मैंने...डाक्टर के...साथ... [हाथों में मुँह छिपा कर धरती पर सिर टेक देती है ।]

उमाशंकर

ऐं...डाक्टर के साथ !

[तेजी से उठ कर बाहर जाते हैं । लालटेन लेकर अपने कमरे में प्रवेश करते हैं...और उसी क्षण हाथ में पिस्तौल लेकर निकलते हैं । आशा इसी बीच में दरवाजे पर जाकर खड़ी हो जाती है ।]

उमाशंकर

हट जाओ...हट जाओ...मेरे साथ विश्वासघात।

आशादेवी

(छाती आगे की ओर बढ़ाती हुई) पहले मुझे मारो।

उमाशंकर

कह रहा हूँ...जाने दो...नहीं तो...

आशादेवी

मैं भी तो कह रही हूँ...पहले मुझे मारो। उसी बेचारे ने विश्वासघात किया है...मैंने नहीं! जो विश्वासघात का दण्ड हत्या है तो पहले मुझे क्यों नहीं मारते?

उमाशंकर

तुम्हे नहीं मारूँगा।

आशादेवी

मुझे नहीं मारोगे और उसे मारोगे, क्यों? भगवान!...टुक मेरी ओर देखो तो...

उमाशंकर

(उसकी ओर देखते हुए) कहो।

आशादेवी

हत्या करोगे?

उमाशंकर

हाँ...

आशादेवी

पर हत्या करने से भी बदला नहीं निकलेगा। मैं अब पवित्र नहीं हो सकती ..अब तो मैं सदैव के लिये...तुमसे अलग...

उमाशंकर

क्यों?

आशादेवी

तुम मेरे उपास्यदेव हो.. तुम्हें छूने का भी अधिकार मुझे अब नहीं... और फिर मैं डाक्टर को प्रेम करने लगी हूँ। मेरे लिये वही पहले पुरुष...

उमाशङ्कर

ऐं (पिस्तौल दूर फेंक देते हैं) तुम उसे प्रेम करती हो ! उस पापी को जिसने तुम्हारा सतीत्व...

आशादेवी

अभी मेरे साथ सतीत्व का सवाल नहीं था...मैं अविवाहित हूँ...

उमाशङ्कर

(कुर्सी पर बैठते हुए) हूँ... (कुर्सी पर सिर झुकाकर ऊपर छत की ओर देखने लगते हैं।)

आशादेवी

(उनके पास आकर) तुम चाहो तो हम दोनो का पाप धो सकते हो...तुम पवित्र हो...गंगा से भी बढ़कर.. क्षमा करो.. अशीर्वाद दो। हम दोनो के हृदय से पाप निकल जाय और हम लोग साथ साथ.. हम दोनों का जीवन....एक...

उमाशङ्कर

तुम्हारा मतलब क्या है ?

आशादेवी

मैं डाक्टर के साथ रहूँगी....

उमाशङ्कर

किस तरह...?

आशादेवी

उनकी स्त्री बन कर। हम दोनों विवाह करेंगे। हम दोनो पाप में एक हुए थे.. वह पाप मिट नहीं सकता...जब तक कि हम दोनो जीवन में एक न हो जायँ...पाप में...पुण्य में, सब में साथी...

उमाशङ्कर

(उद्वेग से) आशा !

आशादेवी

(काँपते हुए स्वर में) कहो देव !

उमाशङ्कर

(क्षण भर उसकी ओर देखकर...उनका मुँह लाल हो उठता है आँखों से चमक निकलने लगती है) पर...मैं भी तुम्हे...प्रेम...

आशादेवी

हे ईश्वर...कैसा था वह प्रेम भगवन्...! कैसा था ! जिसमें एक बार भी छाती नहीं धड़की। एक बार भी रोमाच नहीं हुआ। एक बार भी आँखें नहीं भीगीं ! (एकटक उमाशंकर की ओर देखने लगती है।)

उमाशङ्कर

उसी का दंड दे रही हो !

आशादेवी

दंड ! (कुछ सोच कर) तुम्हें ! (उसका हाथ पकड़कर) नहीं...यह न सोचो।

उमाशङ्कर

तब क्या सोचूँ। (निराश हो उठते हैं।)

आशादेवी

तुम्हें दंड...मैंने अपने इस जीवन का नाश किया है...किसी बहुत बड़ी आशा पर...उसके लिये...

उमाशङ्कर

वह क्या है !

आशादेवी

दूसरे जन्म में तुम्हें पाना।

उमाशङ्कर

इस जन्म में छोड़कर !

आशादेवी

यही तो मेरा त्याग है...मैं अपने देवता को अपवित्र नहीं करूँगी।

[उमाशंकर उठकर बाहर छत पर जाते हैं। चुपचाप खड़े होकर ऊपर आकाश की ओर देखने लगते हैं। आशा वहीं कुर्सी पर बैठ जाती है।]

आशादेवी

तो मैं जाती हूँ...

उमाशङ्कर

कहाँ !

आशादेवी

अपने नए घर...अपने असली घर।

उमाशङ्कर

(लौटकर) कहाँ है असली घर !

आशादेवी

डाक्टर के घर में।...इस देव...मंदिर में अब रहना...

उमाशङ्कर

(उसकी ओर देखते हुए) तो मैं अकेले रहूँगा ?

आशादेवी

(प्रसन्न होकर) हाँ...देवता का स्वभाव है, अकेले रहना...गरोह बाँध कर तो भूत रहते हैं। (उठकर उमाशंकर के पैरों पर अपना सिर रख देती है। पलभर उसी हालत में उमाशंकर झुककर उसके सिर पर हाथ रखना चाहते हैं। पर फिर हाथ खींचकर खड़े हो जाते हैं। आशा उठकर धीरे-धीरे सीढ़ी से नीचे उतर जाती है। उमाशंकर कई बार सिर हिलाते हैं उनकी आँखें बंद हो जाती हैं।

[मनोहर का प्रवेश]

उमाशङ्कर

(मनोहर को गोद में उठाकर उसका मुँह चूमते हुए) मेरे बच्चे (उसे छाती से लगाकर) आह! तो यह मेरी मुक्ति...

[परदा गिरता है।]